

جنوری گری نامیں

~~1~~ भंवर में घिरी नावें

Bhavar Ma giri Nava

वंसीलाल यादव

Bansihal Yadav

Mohamed I. S. & Publishers
22AR

अनुराग प्रकाशन

अजमेर

Anurag prakashan
Ajmer

کھنور میں گری نامیں

~~4~~ भंवर में घिरी नावें

Bhavar Ma giri Nava

वंसीलाल यादव

Bansihal Yadav

Mohamed I. S.
& Publications
22A2

अनुराग प्रकाशन

अजमेर

Anurag prakashan
Ajmer

Acc. No 35852

Cost Rs 3.50

Date 11.1.73

Indal a good merit

*H 83
R 21*

भंवर में घिरी नावें

मौलिक उपन्यास

बंसीलाल यादव

मूल्य : ३ : ५०

सन् : १९७०

प्रथम आवृत्ति

1970

प्रकाशक :

वि. ल. मिश्रा,

अनुराग प्रकाशन,

सुन्दरविलास,

अजमेर ।

वितरक

मिश्रा-ब्रदर्स

पुरानी मंडी,

अजमेर,

मुद्रक :

एस. सी. जैन

राजस्थान प्रिण्टर्स,

पृथ्वी राज मार्ग,

अजमेर ।



भंवर में घिरी नावें

वह दोनों पति-पत्नी की गृहस से बेखबर बैठी थी ।

कमरे में बैठी वह रिक्त, भावहीन नेत्रों से शून्य में कुछ ढूँढने का यत्न-सा कर रही थी—जैसे शून्य के गर्भ से खींचकर कुछ बाहर निकाल लाने की चेष्टा कर रही हो ।.....

कुछ दिन पूर्व जब उसकी आँख खुली तो वह गड्ढे में लेटी हुई थी । उसने आकाश की ओर नज़र डाली तो विल्कुल साफ था, उस गड्ढे में कहीं-कहीं सूखी और खुरदरी घास जमी हुई थी । उसने करवट लेने की कोशिश नहीं की । वह एक सुन्दर, युवा स्त्री थी, जिसकी आयु बीस-बाईस वर्ष से अधिक की न होगी । वह एक निर्जन जंगल में एक गड्ढे में क्यों पड़ी हुई थी ? उसने अपने आस-पास का निरीक्षण किया । अपनी स्मरण शक्ति पर जोर दिया, पर उसके मानस-पट पर कोई भी प्रश्न नहीं उभरता था । अंधेरो से भरपूर एक अनवरत शान्ति उसके मस्तिष्क पर छाई हुई थी ।

सहसा उसने अपने वक्ष को झंझोड़ा । एक वच्चा उसके सीने से चिपटा हुआ था । धुंधराले बाल, मुलायम त्वचा । और वह यह सोचने लगी कि शायद यह वच्चा उसका अपना है । उसके साथे पर एक त्योरी-सी पड़ गई —। वह शायद कुछ याद करने की कोशिश कर रही थी, पर उसकी सारी यादें अंधकार के गर्त में डूब चुकी थीं ।

उसे अपनी बेवसी पर रोना आया । उसने आँखें बन्द कीं तो अक्समात् उसे यों अनुभव हुआ जैसे किसी ने रेडियो का बटन दबा दिया है—। चारों ओर शोर-गुल, चीखें, आहें, हृदय विदारक-चीत्कार । उसका मस्तिष्क फटने लगा । उसने तुरन्त आँखें खोल दीं । वह आवाजों अचानक इस तरह बन्द हो गईं जैसे फिर किसी ने रेडियो का बटन दबा दिया हो ।

उसने ज़रा शरीर हिलाया तो उसे लगा जैसे उसकी कमर और गर्दन में तीव्र दर्द हो रहा है, पर वह दर्द की मंजिलों से आगे गुज़र चुकी थी । उसने ऐसा हृदय विदारक दृष्य देखा था कि उसे अपना दर्द साधारण लग रहा था । यद्यपि उसे अब यह याद नहीं था कि वह घटना कब और कैसे हुई थी, क्योंकि उसकी यादों के द्वार बन्द हो चुके थे ।

वच्चा सीने को झंझेड़ रहा था और अब उसने सिर उठाकर, मा की ओर मुस्करा कर देखा । यदि चाहे मिट जाएं पर प्रकृति नष्ट नहीं होती । उसकी माया विद्यमान रहती है । आखिर वह उसकी मा थी । ममता अन्दर ही अन्दर काम कर रही थी । वच्चा मुस्कराया तो वह भी मुस्करा दी । वच्चे ने मा के पेट पर हाथ मारना शुरू किया । मा को थोड़ी सी गुद-गुदी हुई । वह फिर मुस्करा दी । उसने फिर से सोचने की कोशिश की—। यह वच्चा कौन है ? मैं कौन हूँ ? — पर वह कुछ भी याद न कर सकी । जैसे सब स्मृतियाँ धुंध की पतों में लिपटी हुई थीं ।

वच्चा रेंगता हुआ एक और चला गया । वह भी उठकर बैठ गई ।

वह इस बात पर चकित ज़रूर थी कि वह यहाँ कैसे आई ? उसने स्वयं पर इस तरह दृष्टि डाली, जैसे वह खुद अपनी दृष्टि में कोई अजनबी हो । उसकी कत्थई रंग की जार्जेट की साड़ी निचले भाग में कई जगह से फट चुकी थी । फटी हुई एक पट्टी लटक रही थी । उसने वह फाड़कर अलग कर दी । बाँई ओर के कन्धे पर से साड़ी से मैच करता हुआ ब्लाउज़ फट गया था और उसका गोरा, मांसल कंधा साफ़ दिखाई दे रहा था । उसने अपने हाथों को बड़ी लापरवाही से देखा । एक हाथ में सोने की अंगूठी थी दूसरे हाथ को देखा तो उसमें कोई अंगूठी नहीं थी । वह इस सोच से परेशान हुई कि दूसरे में अंगूठी होनी चाहिये थी—वहाँ वह क्यों नहीं है ? कहाँ गई ? पर उसका मस्तिष्क एक कोरे कागज़ के समान था ।

बास के टिड्डे को बच्चों ने पकड़ना चाहा तो वह फुदक कर एक ओर हो गया । बच्चा ज़रा सहम गया और अपनी माँ की शरण में आ गया और यहाँ निर्भीक होकर टिड्डे को देखने लगा । अब सूर्य की गर्मी तेज़ हो गई थी । उसने गर्मी अनुभव की । उसने इधर-उधर देखा कि कहीं कोई छाया हो, पर कुछ भी दिखाई न दी । वह छाया को तलास करना चाहती थी । वह उठी, पर टांग में तीव्र दर्द होने के कारण तिल-मिला कर फिर बैठ गई । पाँव में काफ़ी चोट आई थी । उसके लिये चलना कठिन था ।

वह पुनः हतप्रभ और ज्ञानशून्य-सी विचारों और सोच में डूब गई । यह चोट कैसे आई थी ? वह कौन है ? वह कहाँ है ? यह कैसे आ पहुँची ? असंख्य प्रश्न उसके सामने उभरे, पर.....वही अंधेरा मस्तिष्क, कोरा कागज़ ।

धूप तेज़ होती जा रही थी । गर्मी की तीव्रता से बच्चा भी वेकल होने लगा । उसने म्लान, मासूमियत भरे भाव से अपनी माँ की ओर देखा और निर्दोष करुण स्वर में कहा—माँ ।'

‘माँ’ का शब्द सुनते ही उसके चेहरे पर ताज़गी-सी आ गई, जैसे

किसी ने एकाएक ठंडी हवा की खिड़की खोल दी हो। मुंह से उसने कुछ न कहा, हां उस शब्द के जादू ने उसके अंग अंग में थर थरी-सी उत्पन्न कर दी और उसने बच्चे को अपने वक्ष में लिपटा लिया। बच्चे ने ब्लाउज पर हाथ मारना शुरू किया। उसने यंत्र चलित अवस्था में बाईं ओर से ब्लाउज को ऊपर उड़स लिया और बच्चे को दूध पिलाने लगी। बच्चे ने दूध पिया और पीते पीते 'गर गर' की आवाज निकालने लगा। थककर उसने अपनी मां का सीना छोड़ दिया और एक ओर होकर उसने घास में खेलना शुरू किया। वह उठकर चल तो सकती नहीं थी, अतः फिर से लेट गई और आंखें बन्द कर ली'।.....

वह अब भी पति-पत्नी की बहस से बेखबर थी। बहस पूर्ववत् चालू थी। डाक्टर साहब धीरेन्द्र की पत्नी मनोरमा देवी अभी भी अपनी बात पर अड़ी हुई थी। बोली—आप डाक्टर हैं हमारी बात कहाँ मानेंगे?

'कैसे मान लूँ? मुस्कराकर डा. धीरेन्द्र ने कहा—यह सब बेहूदा, निर्मूल और निरर्थक बातें हैं।

'मैंने कई उपन्यासों में पढ़ा है'—मनोरमा देवी ने कैफियत दी 'उनमें लिखा होता है कि अचानक आघात से स्मरण शक्ति वापस आ जाती है।'

'ये सब वे सिर पैर की बातें हैं—' डा. धीरेन्द्र ने सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुये अपने कथन पर जोर दिया—' कहीं अचानक आघात से भी स्मरण शक्ति किसी की वापस आई है? उपन्यासों में जरूर पढ़ लिया होगा। फ़िल्में भी इस विषय को छूती हुई अवश्य देखली होगी पर मैंने कहा था इस लड़की के दिमाग में चोट आई है अथवा कोई जोरदार धक्का पहुंचा है। चोट को पूरी तरह आराम नहीं पहुंचता. स्मरण-शक्ति वापस नहीं आयगी।'.....

उनकी पत्नी मनोरमा देवी के मुंह पर जैसे बादल उतर आया। डा० धीरेन्द्र ने पत्नी की निराशा को लक्ष करते हुये तुरन्त कहा—ऐसी निराशा होने की तो कोई बात नहीं है। हम कोशिश में कोई कसर न उठा रखेंगे। फिर प्रसन्न मुद्रा में बोले—बात यह है शीला की

मां, कि जो कुछ मैंने तुम्हें बताया है, वह खास डाक्टरी बात थी। कहानी—किस्से सब बकवास है। आत्म विस्मृति दरअसल एक शारीरिक रोग है, वह कोई मानसिक रोग नहीं। इस सीधी-सादी-सी बात को इन कहानी कारों ने, फिल्म-निर्माताओं ने इतना उलझा दिया है।

मनोरमा देवी ने अधीर हो पूछा—‘तो क्या वह लड़की ठीक हो जायगी?’ डा० धीरेन्द्र अन्यमनस्क भाव से उठ खड़े हुये और सिगरेट को एशट्रे में मसलते हुअे बोले—‘शायद’—

कब तक अच्छी हो जायगी? उसी अधीरता के साथ मनोरमा देवी ने पूछा।

समय व्यतीत होने पर—समय के प्रवाह के साथ! डा० धीरेन्द्र ने जवाब दिया और कमरे में चल दिये।

लड़की अब भी शून्य में कुछ टटोल रही थी।

दो

पास ही एक गाँव था, जिसमें चौदह वर्ष का एक लड़का हरिया गायें, भैंसे चराया करता था। वह प्रायः बाहर वृक्ष के नीचे बैठा हुआ लोक गीत गाया करता था—अपनी मन की मोज का। मन में लहर उठती तो झट से वह घोषणा कर देता कि वह इस गाँव में नहीं रहेगा और न ही खेती इत्यादि का काम करेगा। दूर शहर में जाकर खूब रुपया कमायेगा। ममता की माँ हरिया को बड़े आश्चर्य में देखती। वह जानती थी कि उसका दिमाग चल गया है, पर वह कुछ न कहती। हरिया के दिल में जब जोश उठता तो वह पास के स्टेशन की ओर चला जाता और स्टेशन के बाबू से कहता कि वह गाड़ी पर सवार होना चाहता है, पर पल्ले में पैसा कीई नहीं। वह कितनी ही बार बाबू के पास आया था। बाबू हमेशा उसे अपने पास बिठा लेता और फिर झंझर-झंझर की बातें सुना कर उसे घर वापस भिजवा देता उसके मा-बाप

भी उसका पीछा न करते, क्योंकि उन्हें मालूम था कि स्टेशन का वायु उसे वापस भिजवा देगा।

आज भी हरिया अपने बाप से लड़-झगड़ कर स्टेशन की ओर जा रहा था। जब वह खेतों से निकलकर दूसरी पगडण्डी पर चढ़ा तो उसे एक गड्ढा नजर आया। उनमें उसने एक सुन्दर, तरुण स्त्री को देखा। वह आखें बन्द किए हुये लेटी थी और उसकी बगल में एक बच्चा खेल रहा था। हरिया आखें फाड़-फाड़ कर उस औरत की तरफ देखने लगा। अपने गांव में आज तक उसने ऐसी सुन्दर औरत नहीं देखी थी। बच्चे ने जब एक अजनबी को देखा तो वह जोर-जोर से रोने लगा और साथ ही अपनी माँ को झंझोड़ने लगा। माँ ने आँखें खोल दी। एक अपरिचित लड़के को देखकर उसके चेहरे पर भय के कोई भाव उदय न हुये। हरिया ने बड़े अदब से पूछा—तुम कौन हो ? तुम यहाँ इस तरह क्यों लेटी हुई हो ?

उस स्त्री ने कोई उत्तर न दिया तो हरिया ने दुबारा पूछा—तुम कौन हो ? कहाँ से आई हो ? कहाँ जाओगी ?

इस पर भी वह खामोश रही। अब हरिया सहम उठा। कहीं यह औरत पागल तो नहीं ? वह हरिया की ओर देखे जा रही थी, हरिया ने केवल इशारों ही इशारों में उससे पूछा कि उसे क्या हुआ है, पर वह बिल्कुल रिक्त नेत्रों से उसकी ओर देखती रही।

हरिया ने बचपन में अपनी दादी से कहानियाँ सुन रखी थीं—एक राजकुमार एक परी को जङ्गल में किस तरह बचाता है। दुश्मनों के पंजों से उसे किस तरह मुक्ति दिलाता है। ऐसा ही कोई विचार उसके दिल में पैदा हुआ और उसने उसे इशारे से समझाया कि वह उसके पीछे-पीछे आजाए। इस पर उस औरत ने अपने पांव की ओर-इशारा किया। हरिया ने उसके पांव की ओर दृष्टि डाली। वह बहुत ज्यादा सूजा हुआ था। वह मन ही मन दुखी हुआ। वह मुड़ा और गांव की ओर भागा, पर चार कदम दौड़कर वापस आ गया। वह घूप में पड़ी

हुई थी। बेचारी बेसहारा और निरावलंब गर्मी में जल रही थी। हरिया ने कंधे पर पड़ा अंगोछा उतारा और पास की एक सूखी झाड़ी पर फैला दिया ताकि उसकी छाया उस पर पड़ती रहे। यह देखकर वह हौले-से मुस्करा दी।

हरिया भागा हुआ अपने गांव पहुँचा। उसने गांव वालों को तमाम बात कह सुनाई। वहाँ से कुछ लोग आये और अपने साथ एक खाट उठाते लाये। कठिनाई के साथ वह उस पर लेटी। एक आदमी ने बच्चे को उठा लिया। वह अजनबी लोगों को देखकर चीखने लगा। अन्त में हारकर उसे अपनी मा के पास चार पाई पर लिटा दिया गया।

लोग चारपाई को कंधों पर उठाकर इस तरह ले जा रहे थे, जैसे कोई अर्थी हो और आज जब उसे वह दृश्य याद आया तो उसने अपनी आत्मा की गहराइयों में सोचा कि काश, सच्चे अर्थ में, वह उसकी अर्थी ही होती।

हरिया ने लोगों से कहा कि वह उसे उसके घर ले चले। उसने सोचा कि उसी ने तो उसे जंगल में ढूँढा था। घर पहुँचे तो हरिया दौड़कर डाक्टर को बुला लाया। मदन शर्मा एक रिटायर्ड कम्पाउन्डर था। शहर में कम्पाउन्डरी की दुकान नहीं चल सकी थी तो गांव चला आया। सब लोग उसे डाक्टर ही कहने लगे। उसने पांव को अच्छी तरह धोया और फिर दवा लगाकर पट्टी बांध दी। उसने लोगों को विश्वास दिलाया कि आठ-दस दिन में आराम हो जायगा। चोट मामूली है। घुटना भी उतर गया है।

कुछ औरतें दूध ले आईं। वे बड़े आश्चर्य से उसे देख रही थीं। बने लम्बे पीठ तक लहराते बाल। गोरा रंग—एक दम जैसे मेम हो। गोल, आकर्षक चेहरा। बड़ी बड़ी मादक आँखें। जरा-सा मुस्कराये तो गालों में गढे पड़े।—ईश्वर जाने जंगल में कैसे पहुँच गई।

गांव के लोगों को क्या पड़ी थी कि कुरेदते। हरिया की मां ने

देख भाल शुरू की। आठ ही दिन में उसकी चोट ठीक हो गई और वह उठकर धीरे-२ इधर-उधर घूमने-फिरने लगी। उसने अब काम काज में हरिया की माँ का हाथ बटाना शुरू कर दिया।

उसके इस गाँव में आने के दूसरे ही दिन लोगों ने सुना कि गांव से चार-पांच मील दूर, शहर के समीप ही एक मुसाफिर गाड़ी पटरी से उतर गई थी और इस दुर्घटना में कई आदमी मर गये, पर किसी ने यह नहीं सोचा कि इस स्त्री का भी दुर्घटना से कोई सम्बन्ध है, क्योंकि जिस जगह वह जख्मी पड़ी थी, वह घटना स्थल से करीब पांच मील दूर थी।

जैसे गांव के लोग उसे देखने आये, वैसे ही तीसरे दिन स्कूल का मास्टर भी हरिया के घर आया। उसने सोचा, वह अंग्रेजी तो जरूर जानती होगी। यह बात दिखाने के लिये कि उसे भी अंग्रेजी आती है, उसने गलत-सलत अंग्रेजी में पूछा—ग्राप कौन हैं ?

वह मास्टर की ओर फटी-फटी आँखों से देखती रही। वह कुछ नहीं कह सकती थी। प्राइमरी के बच्चों से जो सवाल पूछा जाता है, वही मास्टर साहब ने अंग्रेजी भाषा में पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

उसने मास्टर की ओर वेदनाग्रस्त और उदास नजरों से देखा और आँखें बन्द करके केवल इतना ही कहा—मैं नहीं जानती।

मास्टर जरा परेशान हो गया। उसे खयाल हुआ कि यह औरत कहीं पागल तो नहीं। उसके चेहरे पर भय के भाव पैदा हुये। हरिया की माँ और दूसरे लोग सहन में बैठे थे। उसका बच्चा हरिया की माँ की गोद में था। मास्टर ने पलट कर हरिया की माँ से पूछा—यह ऐसी कोई हरकतें तो नहीं करती जिससे यह स्पष्ट हो कि इसके सुघ बुध न हो ?

हरिया की माँ ने चिन्तित स्वर में कहा—नहीं तो यह बेचारी तो मौन मूक रहती है—जैसे निश्चल प्रतिमा। जो, कहां उसी तरह करती है। बात क्या है ?

बात क्या होती थी ? मैंने पूछा तो कहने लगी, मैं नहीं जानती।

‘तो क्या हुआ ?’ हरिया की माँ ने बड़ी सादगी से, प्रकृतिस्थ स्वर में कहा—दुःख की मारी भूल गई होगी ।

मास्टर साहब अंघों में काना राजा थे । गांव भर में सबसे अधिक पढ़े लिखे मशहूर थे और हमेशा एक बड़े फ्लासफर की तरह बातें करते थे । अक्सर गांव वालों की हर बात को वह यह कह कर रद्द कर देते थे—‘तुम्हारा क्या है ? तुम तो बिल्कुल जाहिल और अनपढ़ हो ।

मास्टर ने हरिया की मा से कहा—तुम नहीं जानती, यह औरत पागल है । पागल औरत को पागल खाने भिजवाना चाहिये, वरना तुम्हारे सर पर मुसीबत टूट पड़ेगी । डाक्टर साहब से परामर्श करा और इस मुसीबत को जितना जल्दी हो, घर से निकाल दो ।

यह कह मास्टर तो चला गया पर हरिया की माँ सोच में डूब गई ।

तीन

हरिया की माँ सोचने लगी, यह औरत तो बिल्कुल पागल मालूम नहीं होती। न किसी को मारती है, न किसी को गाली देती है। पर मास्टर ने उसके दिल में एक आतङ्क-सा पैदा कर दिया था। वह उस औरत के बच्चे से असीम प्यार करने लग गई थी। वह उसे एक पल के लिये भी आँख से दूर नहीं होने देती थी। फिर भी उसने निश्चय कर लिया कि वह बड़े डाक्टर के पास इस औरत को जरूर ले जायगी।

दूसरे गाँव के थोड़ी दूर बाहर जाकर एक रिटायर्ड डाक्टर साहब की कोठी थी। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने अपने जीवन का अधिकांश भाग शहर में व्यतीत किया। वह शहर के बड़े अच्छे, सफल और योग्य डाक्टर समझे जाते थे। मरीजों को उन पर बड़ा विश्वास था। आजकल के डाक्टरों की तरह वह अगर चाहते तो लाखों रुपया जमा कर सकते थे, पर वह कारोबारी डाक्टर नहीं थे। मरीजों से हमदर्दी और मुहब्बत करते थे, मरीज की खाल नहीं उधेड़ते थे। अस्पताल के मरीज सदा

उनकी राह देखते थे । तीस वर्ष के बाद अस्पताल से रिटायर हो गये तो उस गांव में अपनी जमीन पर चले आये । वह स्वयं जमीन में खेती-बाड़ी भी करते । अब हर समय उन्हें जमीन की काश्त का खयाल था । उनकी आजीविका भी यही थी । उनके बाल-बच्चे सब जवान होकर नौकरियों में लगे हुऐ थे । केवल वह और उनकी पत्नी गांव में बड़े सुख-चैन की जिन्दगी गुजार रहे थे । उनके बच्चे बारी-बारी से उनसे मिलने गांव आते तो उनकी उपस्थिति में घर में खूब चहल-पहल होती ।

डाक्टर साहब की पत्नी यद्यपि शहरी जिन्दगी पसन्द करती थी, पर डाक्टर साहब की रुचि देख कर वह भी देहाती वातावरण से परिचित हो गई । कई गांव की स्त्रियां उनके घर काम करने आती । वह हर औरत के बच्चों की भी सहायता करती । स्वयं दूध दोहती, जमाती, मक्खन निकालती । डाक्टर जब उसके काम की प्रशंसा करता तो वह मन ही मन बहुत खुश होती ।

हरिया की माँ भी डाक्टर साहब के घर पर काम करने आ जाया करती थी । जिस दिन यह औरत उसके बेटे को जंगल में पड़ी हुई मिली और उसके घर ले आई गई, उसी दिन उसने डाक्टर की पत्नी को सारा हाल संक्षेप में कह सुनाया था । और फिर जब जब वह डाक्टर साहब के यहाँ जाती, तभी मनोरमा देवी उससे इस औरत के बारे में पूछ-ताछ करती । मनोरमा देवी को यह खयाल था कि शहर की रहने वाली होगी तो उससे मिलकर शहर की बातें होंगी । जी बहलेगा ।

मनोरमा देवी ने इस बात का डाक्टर साहब से भी जिक्र किया, पर उस समय डाक्टर साहब एक नौकर से सूर्य मुखी फूल की बुआई के बारे में बातें कर रहे थे । उन्होंने सुना-अनसुना कर दिया क्योंकि अब मरीजों की अपेक्षा उन्हें जमीन से अधिक दिलचस्पी थी ।

हरिया की माँ ने जब मनोरमा देवी को मास्टर साहब की बात बताई और यह भी कहा कि मास्टर साहब कहते हैं कि वह औरत पागल है और उसे पागलखाने पहुँचा दिया जाए तो मनोरमा देवी को

बहुत चिन्ता हुई। उसने कहा—मैं तुमसे पहले भी कह चुकी हूँ कि उस औरत को यहाँ लाओ पर तुमने अब तक मेरी कोई सुनाई नहीं की। अब तो उसे तुम्हें जरूर लाना पड़ेगा। मैं डाक्टर साहब की खुशामद करूंगी। वह अवश्य उसका निरीक्षण करेंगे। हो सकता है, वह पागल न हो और अपने आपको छिपाने के लिये अपना नाम न बताती हो। मैं कहती हूँ, तुम उसे आज ही लेकर आओ।

हरिया की माँ उसे लेने चली गई और उधर मनोरमा देवी अपने पति की खोज में खेतों की ओर चल दी।

डाक्टर साहब ने अपनी पत्नी को देखा तो बोले—‘खैर तो है ? इस समय यहाँ कैसे आना हुआ ?’

मनोरमा देवी ने कहा—‘हरिया की माँ उस अज्ञात स्त्री को लाने गई है। आप उसका निरीक्षण करेंगे।’ उसने प्रश्न और उत्तर को एकाकार कर दिया।

डाक्टर वीरेन्द्र ने आश्चर्यवत् पूछा—‘कौनसी अज्ञात औरत ?’

मैंने आपको बताया तो था। वही औरत जो बाहर खेतों के समीप एक गड्ढे में जल्मी पड़ी मिली थी।

‘किसको मिली थी ?’ डाक्टर ने फिर सवाल किया।

‘हरिया को—मैंने बताया तो था।’

‘क्या हुआ है उसे ?’

‘हरिया की माँ कह रही थी कि वह पूछने पर अपना नाम भी नहीं बताती।’

‘नहीं बताती होगी। मर्जी उसकी।’

‘यह बात नहीं, हरिया की माँ कहती है कि उसे अपना नाम याद नहीं है।’

‘क्या फर्क पड़ता है ? नाम याद न हो, अपनी जात तो मालूम है उसे ?’

‘आप तो बेसिर-पैर की बातें करने लगे । वह कहती है, उसे अपना पिछला कुछ भी याद वहीं—कौन हैं, कहां से आई है, जंगल में क्यों पड़ी थी । वहां कैसे पहुँच गई, कहाँ की रहने वाली है, क्या नाम है—? कुछ भी तो उसे मालूम नहीं ।’ एक सांस में मनोरमा देवी बोल गई ।

इस पर डाक्टर धीरेन्द्र ने अपनी ऐनक के शीशों के ऊपर से अपनी पत्नी को देखा और कहा—‘वह नहीं जानती तो मैं क्या करूँ ?’

मनोरमा देवी का धैर्य अब छूटा जा रहा था ‘तत्पर हो बोली—आप सब कुछ कर सकते हैं । हरिया की माँ का ख्याल है कि वह पागल है । आपको उसका निरीक्षण करना होगा ।’

डाक्टर कुछ देर तक अपनी पत्नी की ओर देखता रहा । उसकी दृष्टि उसके सफेद बालों पर पड़ी, जो बाल कभी बिल्कुल काले थे । चालीस वर्ष पहले की बातें आँखों के सामने कौंच गई । मुस्करा कर कहा—‘तुम्हारी बात टालने की सामर्थ्य मुझमें आज तक न हुई ‘मनो’ । ले आने दो उसे । मैं उसे देखूँगा । अब तो बस ?’

मनोरमा देवी ने कृतज्ञता पूर्ण नेत्रों से अपने पति की ओर देखा और मुस्करा दी । डाक्टर भी मुस्कराया । यह बहुत पुरानी मुस्कानें थीं । जवानी में ऐसी मुस्काने उसके जीवन को आलोकित किया करती थीं । मनोरमा देवी युवावस्था की यादों से ज़रा शर्मा गई और कोई धुन गुन गुनाती हुई घर की ओर चली गई !

चार

तीन बजे के करीब हरिया की माँ बच्चे को गोद में लिये आगे आगे आ रही थी और उसके पीछे वह औरत लंगड़ाती-सी आ रही थी। वह बड़ी कठिनाई से उसे वहाँ लाई थी। यह बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी कि उसे कहाँ और क्यों ले जाया जा रहा है। जब वह हरिया की माँ के साथ जाने को तैयार न हुई तो गांव के उन्हीं मास्टर साहब को बुलाया गया।

उन्होंने आते ही फिर अंग्रेजी में कहा—‘तुम जाओ। तुम्हें डाक्टर बुला रहा है’

‘कहाँ?’ उसने पूछा।

‘डाक्टर साहब तुम्हें देखना चाहते हैं, बड़ी कोठी में। पैदल एक घण्टे का रास्ता है।’

‘मुझे क्यों देखना चाहते हैं?’

मास्टर जी अब क्रोधित हो उठे । उन्होंने अपना चश्मा उतार कर अपने हाथ में ले लिया और ऊँचे स्वर में कहा—‘बात-बात पर सवाल करती है यह औरत । क्या मैं दिन भर इसके सवालों का जवाब देता रहूँ ।’ यह कह, उन्होंने उसकी ओर देखा और चीख कर कहा—‘जाओ ।’

अब सही बात उसकी समझ में आ गई थी । मास्टर साहब का गुस्से में आना और माथे पर त्वोरी चढ़ा कर बातें करना । उसके लिये काफी था । उसने मन ही मन सोचा, शायद उस घर में अब मैं एक बोझ हो गई हूँ । यह सब मुझसे थक गये हैं और अब यहाँ से धकेल देना चाहते हैं । अतः वह विवश और निरुपाय-सी हरिया की माँ के साथ चल दी ।

उस दिन गर्मी खूब पड़ रही थी । हरिया की माँ जब उसे लेकर डाक्टर की कोठी पर पहुँची तो वह बहुत थक चुकी थी । वरामदे के सामने पर्दा लटका हुआ था । वरामदे का सीमेंट ठण्डा मालूम हुआ तो वह वहीं लेट गई । गर्मी के कारण डाक्टर और उनकी पत्नी अन्दर आराम कर रहे थे ।

डाक्टर की पत्नी पाँच बजे बाहर निकली तो उसे मालूम हुआ कि हरिया की माँ उस औरत को साथ लेकर आई है । उसे अत्यन्त खुशी हुई.....

अब यह डाक्टर साहब के घर पर ही रहती थी । डाक्टर धर्मेन्द्र ने उस अज्ञात औरत की बीमारी पर खूब विचार किया और एक्सरे से पहले ही वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह विस्मृति का रोग है । दिमाग के एक भाग पर चोट आई है जिसके कारण इस अज्ञात स्त्री को पिछली कोई भी बात याद नहीं रही ।

और जब उनकी पत्नी ने पुरानों यादों से सम्बन्धित कहानियों, उपन्यासों और फ़िल्मों का जिक्र किया तो डाक्टर ने कहा—‘यह सब

वकवास है। दरअसल यह एक विस्मृति रोग है और जब अन्दर की चोट स्वस्थ हो जायगी तो यादें स्वतः ही वापस आजाएंगी।'

एक दिन वह उसे अपने साथ लेकर शहर गया। वहाँ एकसरे लिया गया। एकसरे से ज्ञात हुआ कि दिमाग में और कोई बीमारी नहीं।

डाक्टर की पत्नी ने अपने पति को बताया कि दिन के समय वह अज्ञात औरत विलकुल सन्तुष्ट नज़र आती है। खामोशी से अपना काम करती है, पर उसकी रातें करवटें लेते गुज़रती हैं। आँखें खुली रहती हैं। सुबह के समय बहुत ही थकी हार कर सो जाती है। हरिया की माँ ने भी यही बताया था।

जब डाक्टर ने उससे इस बात के बारे में पूछा तो उसने कहा— 'मैं डर के मारे अपनी आँखें बन्द नहीं करती। यदि बन्द कर लूँ तो शोर, धुँआ, धूल, मिट्टी, अंधकार, दर्दनाक चीखें और आहें सुनाई देती हैं। मैं यह सब सहन नहीं कर सकती डाक्टर साहब।'

'यह शोर कहाँ से आता है?' डाक्टर ने मृदु कण्ठ से पूछा।

उसने बुझे हुये स्वर में जवाब दिया— 'मैं कुछ नहीं जानती—कुछ भी तो नहीं जानती डाक्टर साहब। मेरे मस्तिष्क में अंधकार ही अंधकार है।'

'फिर होता क्या है?'

'मुझे कुछ मालूम नहीं—' उसने उच्छ्वास फँका।

डाक्टर ने इस बात पर जोर न दिया। हाँ, नींद की दवा शुरू करदी। उसने अपनी पत्नी को बताया कि मरीजों को गोलियाँ रात को सोते समय जरूर खिला दिया करो। इसका इलाज केवल नींद है। यदि इसे नींद आना शुरू हो गई तो यह अति शीघ्र स्वस्थ हो जाएगी।

डाक्टर ने अंग्रेजी और हिन्दी अखबारों में 'गुम हुये' के बारे में विज्ञापन ध्यान से देखे और अपनी ओर से भी उस औरत के बारे में विज्ञापन दिया। हरिया से उससे कुरेद-कुरेद कर पूछा, पर वह भी कुछ

न बता सकता था। बस, यही कि वह लोगों के साथ उसे गड्ढे में से उठाकर घर ले आया था। जहाँ वह पड़ी हुई मिली, वहाँ दूर-दूर तक समीप में कोई मकान भी न था। डाक्टर ने पुलिस को भी सूचना दी। वहाँ से भी यही जवाब मिला कि किसी थाने में किसी गुम हुये की रिपोर्ट दर्ज नहीं हुई। डाक्टर ने शहर में अपने कुछ-एक दोस्त को भी पत्र लिखे पर कहीं से भी आशा जनक उत्तर न आया।

डाक्टर थक हारकर बैठ गया। वह अब इस प्रतीक्षा में था कि जब भी इस अज्ञात औरत का रोग दूर होगा और इसे पुनः पुरानी बातें याद आने लगेंगी तभी इसके व्यक्तित्व के बारे में पर्दा उठेगा—वरना कोई उम्मीद नहीं थी।

मनोरमा देवी के मस्तिष्क में यह कहानी चक्कर लगा रही थी कि इस औरत पर अवश्य कोई अत्याचार हुआ है और इसके पति ने इस पर जुल्म ढाया होगा। फिर इसे घर से निकाल दिया होगा। शायद इसका पति किसी पास के शहर ही में रहता होगा और अब जान बूझ कर विज्ञापन का उत्तर नहीं देता। मनोरमा देवी को क्या पता कि इस औरत के व्यक्तित्व के साथ एक लम्बी कहानी जुड़ी हुई है।

इसी तरह दिन गुजरते रहे।

उसे डाक्टर घमँन्द्र के यहाँ रहते हुये अब चार मास होने आये थे और अब उसकी हालत में कुछ परिवर्तन निश्चित रूप से महसूस हो रहा था और उसकी यादें एक-एक कर, टुकड़ों में बंट-बंट कर वापस आने लगी थीं। वह बैठी कोई कपड़ा सी रही थी कि अकस्मात् उसके मुँह से निकला—'नीलू।' और प्रतिध्वनि के साथ-साथ वह आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगी। ओह दूसरे ही क्षण उसके चेहरे पर एक विशेष चमक-सी फैल गई।

डाक्टर की पत्नी एक दम चौंकी—'क्या 'कहा तुमने ?'

उसने जवाब दिया —'नीलू' . . .'

‘नीलू……?’ प्रतिध्वनि के समान मनोरमा देवी ने दोहराया और प्रश्नवाचक दृष्टि से उसका मुँह ताकने लगी ।

‘हां, मेरा नाम नीलू ही तो है ।.... खुशी से दीप्त चेहरे से वह बोली । मनोरमा देवी के हर्ष का ठिकाना न था । वह बड़ी तेजी से बाहर भागती हुई गई और अपने डाक्टर पति को बुला लाई ।

पांच

वे दोनों—डाक्टर और उनकी पत्नी इस कदर खुश थे जैसे कि उनके पहले बच्चे ने बोलना शुरू किया हो ।

एक सप्ताह तक फिर डाक्टर और उसकी पत्नी ने धैर्य से काम लिया । एक दिन दोनों पति-पत्नी नीलू के बच्चे को प्यार कर रहे थे कि अचानक नीलू कहने लगी—‘राहुल । इसका नाम तो राहुल है ।

हर ओर खामोशी थी । वे दोनों पति-पत्नी उसकी ओर देख रहे थे, जैसे उसमें एक नये जीवन का संचार हो रहा हो ।

थोड़ी देर के बाद नीलू ने कहा—‘इसकी दो बहनें भी हैं ।’

‘क्या नाम है उनका ?’ बहुत ही मृदु स्वर में सस्नेह पूछा डाक्टर ने । थोड़े बिलम्ब के बाद नीलू ने उत्तर दिया—‘सुनीता और अनीता ।’

‘वह कहाँ हैं ?’ डाक्टर ने उसी स्वर में फिर पूछा ।

नीलू कुछ देर सोचती रही और फिर कहा—‘मुझे नहीं मालूम ।’

‘कोई बात नहीं बेटी । तुम अपने दिमाग पर जोर मत डालो । धीरे धीरे सब कुछ याद आ जाएगा ।’ डाक्टर साहब ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा ।

डाक्टर अपनी जगह से उठ गये । उन्होंने अपना मुँह जब दूसरी ओर फेरा तो उनकी आँखों में खुशी के आंसू झिलमिल रहे थे ।

धीरे धीरे नीलू की विस्मृति का रोग दूर हो रहा था । कुछ-कुछ विलम्ब के बाद यादें लौट रही थी । कभी वह अपने वचन को याद करती, कभी कालेज के दिनों की कई छोटी-छोटी मनोरंजक बातें दोहराती, जिनसे उसकी पूरी पहचान डाक्टर साहब को नहीं हो पाती थी । एक दिन उसने अपने माँ-बाप का नाम बता दिया । पर इससे पहले कि उसका पत्र ‘डैडलैटर आफिस’ से लौट कर आता, वह बता देती कि उसके माँ-बाप तो एक मोटर-दुर्घटना में मर गये थे, जब उसकी आयु केवल ग्यारह वर्ष की थी ।

एक दिन वह बगीचे में घूम रही थी उसके साथ मनोरमा देवी भी थी । अचानक नीलू बोली—‘मेरा पति मुझसे बड़ी मोहब्बत करता है—सच मम्मी, बहुत ही प्यार करता है मुझे ।’

डाक्टर की पत्नी वैसे तो अब तक मौन थी पर इस बात के सुनते ही उसके दिल में एक जोश पैदा हुआ क्योंकि नीलू ने आज पहली बार अपने पति के बारे में जिक्र किया था । डाक्टर की पत्नी ने अधीर हो कहा—‘अच्छा ?’....

‘मेरी बेटी अनीता अस्पताल में पैदा हुई थी मम्मी’—नीलू ने कहा—‘तो मेरा पति हर रोज मेरे लिये पीले गुलाब लाया करता था और मेरा मुँह चूम कर कहा करता था कि तुमसे बढ़कर दुनिया में और कोई सुन्दर नहीं, ‘इसी लिये तो ऐसी खूबसूरत बच्ची को जन्म दिया है ।’

नीलू कुछ देर खामोश रही । फिर वह मुस्करा कर मनोरमा देवी

की ओर देखने लगी और उसका कन्धा दबाकर बोली—‘मम्मी, असल बात तो यह है कि मेरा पति मुझे बहलाने के लिये मुझे यह कह रहा था क्योंकि इस लड़की से पहले भी एक लड़की थी, जिसका नाम सुनीता था और मेरी असीम इच्छा थी कि इस बार लड़का पैदा हो, फिर भी लड़की पैदा हुई, इसलिये मेरा पति इस बच्ची की तारीफ कर रहा था। यह अंगूठी मेरे पति की निशानी है। एक हीरे की और अंगूठी थी। भगवान जाने वह कहाँ गई। अपने पति का विचार आते ही खुशी की एक लहर-सी उठती है, इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ याद नहीं।’

प्रतिदिन एक नई याद नीलू के मन में ताजा हो जाती थी। अपनी शादी का दिन भी उसे याद आ गया फिर विवाह के दिन की समस्त खुशियाँ भी उसके मस्तिष्क में घूम गईं। अब वह हर समय अपने पति के बारे में सोचने लगी।

एक दिन जब उसे डाक्टर शहर लेजा कर उसके लिये साड़ी खरीद रहे थे तो अचानक नीलू ने जोर से कहा—‘अशोक।’ डाक्टर ने मुड़कर नीलू की ओर देखा। डाक्टर तुरन्त समझ गया कि हो न हो, यह उसके पति का नाम हो सकता है।

नीलू ने दूसरे ही क्षण कहा—‘उनका नाम अशोक भारद्वाज है। हमारा घर अहमदाबाद में है। सोसायटी... ? सोसायटी—आनन्द सोसायटी, लाल बाग के पीछे।’

वह वापस अपने घर लौट आये। नीलू बहुत ही खुश थी। डाक्टर ने नीलू के पति को एक पत्र लिख कर डाक में डाल दिया।

नीलू को यहाँ रहते २ लगभग सवा साल होने आया। डाक्टर और उनकी पत्नी को केवल उस दिन का इन्तजार था जब नीलू की यादें ताजा हो जाएं। पर इस अवधि में ही वह इस घर की एक सदस्य बन गई थी। डाक्टर अपनी बेटियों से अधिक उससे प्यार करने लगा था। मनोरमा देवी एक पल के लिये भी नन्हे राहुल और नीलू के बिना नहीं रह सकती थी। डाक्टर के दिल में एक विचित्र-सी टीस उठी।

उसे यों मससूस हुआ जैसे वह अपनी बेटी को उसके पति के घर की ओर विदा करने वाला हो ।

नीलू ने कहा—‘आप ही मेरे दूसरे पिता हैं । आपने उन्हीं का स्थान लिया है । मैं आपके इस वात्सल्य और उपकार को इस जीवन में कभी नहीं भुला सकती । समझ में नहीं आ रहा कि किन शब्दों में मैं अपना एहसान जाहिर करूँ ।’... यह कह, वह संक्षिप्त-सा रुकी और फिर भारी कण्ठ से, विगलित स्वर में बोली—‘अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं स्वयं चली जाऊँगी ।’

उसकी आंखें छलछला आईं ।

डाक्टर ने यह सोचकर कि नीलू उनके यहाँ कुछ दिन और रहले, कहा—‘बेटों, ऐसी कौनसी जल्दी है ? पहले पत्र के जवाब का तो इन्तजार करो । दूसरी बात यह कि तुम्हारी बीमारी अभी पूरी तरह ठीक भी नहीं हुई । अभी तक तो तुम्हें यह बात भी याद नहीं आई कि तुम उस गड्ढे में कैसे आकर गिरी और वहाँ कैसे पहुँच गई ?’

‘कोई बात नहीं, पिताजी’ आखिर यह तो मैं अब जानती ही हूँ कि मैं कौन हूँ और मेरे पति कौन हैं । इतना ही काफी है । सब कुछ धीरे-धीरे याद आ जायगा ।’

उदास होकर डाक्टर ने कहा—‘तुम ठीक कहती हो । तुम्हें विदा करने को अपने आपको तैयार कर लेंगे । यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो चली जाना, कुछ-एक रोज में ।’

नीलू ने डाक्टर को ऐसा उदास देखा तो उसने आँसुओं के भीतर से हँसने की कोशिश करते हुये कहा—‘मेरे अच्छे पिता, आप दिल छोटा न करें । क्या आप समझते हैं कि मैं हमेशा के लिये आपको छोड़कर जा रही हूँ ? मैंने आपको अपना माँ-बाप बना लिया है । अब आप ही माँ-बाप हैं । जब भी मौका मिला, यहाँ आती हूँगी । तीनों बच्चों को भी साथ लाऊँगी और हाँ, अपने पति को भी ‘कितनी खुशी होगी मुझे ?’

उसी रात विचित्र घटना हुई । डाक्टर और उनकी पत्नी दूसरे कमरे में सोये हुये थे कि अचानक नीलू की चीखों की आवाज सुनाई

दी। दोनों उसके कमरे में भागे हुये गये। उन्होंने देखा, नीलू फर्श पर लेटी हुई और चीखें मार रही है और उसने जोर से दोनों कान बन्द कर रखे हैं। वह चीखती जा रही थी 'डाक्टर ने उसे भंभोड़ा, आवाजे दीं, किन्तु उसने नहीं सुना। ये चीखें एक हिस्टीरिया के रोग की जैसी थी। डाक्टर बहुत चिल्लाया पर नीलू ने नहीं सुना। इसपर डाक्टर ने उसके दो थप्पड़ लगाये तो नीलू कुछ शान्त हुई और डाक्टर की ओर इस तरह देखने लगी जैसे कुछ भी नहीं देख रही थी। उसके नेत्र डाक्टर पर आवद्ध थे पर वह देख कहीं और रही थी' उसकी उग्रता अब धीरे-धीरे विलीन हो चुकी थी।

डाक्टर अब नीलू के पास बैठे हुये थे। तूफान के साथ खामोशी भी होती है। सब मौन, मूक थे। दो मोटे-मोटे आंसू नीलू की आंखों से चूकर उसके तकिये में समा गये।

नीलू ने खामोशी को भंग किया—'मेरी हया और शर्म मर चुकी है।

डाक्टर ने प्रत्युत्तर में कुछ नहीं कहा, स्नेहावेग से केवल उसका हाथ दबाया' नीलू की आंखों से आंसू बहने लगे। थोड़ी देर बाद जब आंसू थमे तो डाक्टर ने कहा—'मुझे कुछ बताओ तो सही तुम्हें क्या याद आता है? किस विभीषिका से तुम इस तरह चीखें मार रही थीं?'

नीलू ने साड़ी के छोर से आंखें पोंछते हुये डाक्टर साहब की तरफ देखा 'विगत पूरे तौर पर लौट आया था और उसी के साथ दुखों की असीम लहरें थीं। उसने अपनी बीती घटना सुनाना आरम्भ किया.....

नीलू अहमदाबाद से गाड़ी में सवार हुई। वह अपनी एक प्रिय सखी की शादी में सम्मिलित होने बम्बई जा रही थी। अशोक ने मना भी किया पर नीलू ने बहुत ज़िद की। वह सहेली उसे बहुत प्रिय थी। वे दोनों स्कूल और कालेज में एक साथ पढ़ती रही थीं। वह जानती थी कि यदि वह नहीं गई तो उसकी सहेली का दिल टूट जायगा। जीवन में शादी का अवसर एक ही बार आता है। वह फ्रस्ट क्लास के डिब्बे में अकेली ही बैठी थी 'साथ में राहुल था और बेटा अनीता' अशोक बिदा करने स्टेशन तक आया था। जब गाड़ी चली तो उसका चेहरा बहुत

उदास हो गया । बच्चे बहुत देर तक अपने पापा को 'टा—टा' करते रहे ।.....

बड़ोदा से एक और युवा लड़की डिव्वे में प्रविष्ट हुई 'उसने अपनी सीट यहीं से रिजर्व कराई थी' वह आकृति तथा क्रंद और शरीर की बनावट में भी नीलू से बहुत कुछ मिलती जुलती थी । उसे भी वम्बई ही जाना था । वहाँ उसका पति नौकरी करता था वह मेरी अनीता से थोड़ी ही देर में बहुत घुल-मिल गई, यद्यपि अपरिचित लोगों से अनीता बहुत कम घुलती-मिलती थी' हम दोनों एक दूसरे से हंस-हंस कर बातें करने लगीं ।

नीलू को अब छोटी-छोटी बातें याद आ रही थीं ।

रात के करीब साढ़े दस बजे होंगे । उस समय अनीता उस लड़की की गोद में थी । उसने मेरी उंगली में वह हीरे की अंगूठी देखी तो बोली—'यह तो बड़ी शानदार अंगूठी है ।'

मैंने पहले तो अपनी सहयात्री को बांये हाथ की यह वाली अंगूठी दिखाई, जिसमें लाल रंग का पत्थर जड़ा हुआ है और कहा—'यह मेरी शादी की निशानी है । वह मुझसे हर समय यही कहा करते हैं कि शादी के समय मैं अमीर नहीं था, इसलिये खेद है कि मैंने मामूली-सी अंगूठी दी । पर वहन, मुझे यह अंगूठी बहुत प्रिय है । मैं तो लाखों रुपयों से भी अधिक इसकी कीमत समझती हूँ । और यह दूसरी हीरे की अंगूठी उन्होंने मुझे इस बच्ची के जन्म पर भेंट में दी थी । वह कहते थे कि यह बहुत कीमती है । मेरा दिल बहलाने के लिये ही शायद यह अंगूठी मुझे दी थी । बात यह है कि इस अनीता के जन्म पर मैं बहुत उदास हो गई थी । मेरा विचार था कि इस बार मेरे लड़का पैदा होगा पर मैंने इस लड़की को जन्म दिया था ।

मैंने हीरे की अंगूठी उतार कर अपनी उस हम-सफर को दिखाई । उसने वैसे ही अपनी उंगली में उसे डाल लिया और हंसती हुई आंखों से बोली—'वाह..... कितनी खूबसूरत है—! '

और अचानक वक्तियां बुझ गईं और एक तीव्र धक्के से गाड़ी का डिब्बा उलटता हुआ प्रतीत हुआ । मैंने तुरन्त इस नन्हें राहुल को अपने सीने से लगा लिया । लकड़ी के तख्ते ज़ोर-ज़ोर से टूटने लगे । शीशे भी टूट-टूट कर गोलियों की तरह इधर-उधर बिखरने लगे । शोर धुआं, मिट्टी, धूल, चीखें और आहें सर्वत्र सुनाई देने लगीं ।

मैंने चीखकर पुकारा—‘अनीता ! अनीता !’ दूसरी ओर से अनीता की एक तेज़ चीख मेरे कानों में आई और तभी गाड़ी के तख्ते टूट कर बीच में आ गये थे । मैं उसे ढूँढ न सकी । मैंने किसी तरह बड़ी हिम्मत से काम लेकर एक तख्ता हटाया, पर दूसरा तख्ता बहुत भारी था—। मैं मन ही मन बोली—‘हे भगवान मुझे इतनी शक्ति दे कि इसे मैं निकाल सकूँ ।’ पर मेरा बस न चल सका । मैं पागलों की तरह तख्तों और लोहे की सलाखों से लड़ती रही । मैंने राहुल को नीचे बिठाकर पूरा जोर लगाया, पर कोई बात न बनी । चीख-चीख कर पुकारती रही—‘अनीता । मेरी बच्ची ।’ और मेरी आवाज़ रुक गई । आँसू आँखों में सूख गये । करूँ तो क्या करूँ । मेरी बच्ची मेरी ही आँखों के सामने मौत के मुँह में जा रही थी । और हम सफ़र डिब्बे के आधे टूटे ढाँचे के नीचे बाहर दबी पड़ी थी ।

अनीता ऊपर की पूरी सीट के नीचे दब गई थी । सीट के ऊपर भी कुछ बलवा पड़ा हुआ था । मैंने अनीता के एक पैर को छुआ, फिर अपने कन्धे से पूरा जोर लगाकर सीट को थोड़ा सा उठाया ‘मेरी बच्ची बुरी तरह कुचली जा चुकी थी’ जिन्दगी का कोई अन्तिम सांस तक बाकी न था । मैंने एक तेज़ चीख मारी और फिर मुझे राहुल याद आया । मैं लपकी और उसे गोद में ले लिया और सीने से चिपका लिया । कहीं वह भी किसी तख्ते के नीचे कुचला न जाए—इस डर से मैं झपट कर बाहर निकली । कहीं मेरा बच्चा धुँए से घुटकर न मर जाय—इस डर से मैंने डर कर मैंने भागना शुरू किया । मेरे मस्तिष्क में एक ही बात घूम रही थी कि हर हालत में राहुल को बचा लेना है ।...

रात का समय था । मैं राहुल को वक्ष से लगाये पागल—सी दौड़ी

जा रही थी। ऐसा मालूम होता था जैसे कोई अज्ञात, अवश्य शक्ति मुझे उड़ाती हुई ले जा रही है। पीछे-पीछे, चीखें और आहें भागती हुई आ रही थी। भय के कारण मुझ में असीम शक्ति आ गई थी और मैं भाड़ियों, पत्थरों और दूसरी रुकावटों को फलांगती हुई—चेतना-वेदना विहीन-सी भागी जा रही थी। पता नहीं मैं कब तक इस तरह भागती रही और फिर हांफ कर एक गड्ढे में जा गिरी।.....

मैं ज़ख्मी हो चुकी थी पर खुश थी। मैंने राहुल को बचा लिया था। मेरा मस्तिष्क इस आघात से इस क्रूर बोझिल हो गया था कि मुझमें और सोचने की शक्ति शेष न रही। मेरे दिमाग में एक घमाका-सा हुआ और मैं बेहोश हो गई।.....

नीलू की आंखों से आंसू टप-टप गिर रहे थे।

डाक्टर और उनकी पत्नी भी अश्रुप्लावित थे। डाक्टर ने बहुत ही प्यार से उसके सिर को सहलाया और रवाना हो जाने का अनुरोध किया—“अब चुप हो जाओ बेटी। जो होना था, सो हुआ। तुम बच गई, राहुल बच गया—यही क्या भगवान की कुछ कम कृपा है?”..... पर यादें लौट रही थीं। यह यादें नीलू को निढाल कर रही थीं। उसके दिल का खून हो गया था। उसे याद आया कि उसकी बच्ची अनीता दुर्घटना में मर चुकी थी। कैसी खूबसूरत बच्ची थी, कितनी प्यारी—ठीक उसी के अनुरूप। पिता की कितनी लाड़ली थी वह। आज वह कितनी बड़ी हो जाती। वह मन ही मन कहने लगी—‘मेरे अशोक, मुझसे नाराज़ मत होना। मैं अनीता को नहीं बचा सकी। वह मेरे बस की बात नहीं थी। पर शायद वह मेरी गोद में होती तो राहुल की तरह बच जाती ‘मैं सच, बहुत शर्मिन्दा हूँ अशोक।’..... वह फफक रही थी।

जब वह अशोक से मिलेगी तो रो-रो कर उससे माफी मांगेगी। सुनीता तो घर पर है। मेरा प्यारा बेटा राहुल मेरे पास है। वह इस बात पर तो अवश्य खुश होंगे कि मैंने मुन्ना को तो बचा लिया। लेकिन जब उन्होंने अथवा सुनीता ते मुझ से अनीता को मांगा तो मैं क्या जवाब

देहूंगी अथवा अपना मुंह कैसे दिखा पाऊंगी ? उसका दिल टूट टूट होता रहा । डाक्टर साहब और मनोरमा देवी से जितनी ज्यादा सान्त्वना उसे मिल रही थी, उतना ही अधिक उसे रोना आ रहा था ।

दो दिन और गुज़र गये । अशोक की ओर से कोई खबर न आई । नीलू बड़ी चिन्तित हुई । वह हर रोज़ डाक का बड़ी अधीरता से इन्तज़ार करती । आखिर पत्र आ गया । डाक्टर भी घर पर ही मौजूद थे । डाक्टर ने पत्र खोला । नीलू पीछे खड़ी देख रही थी । लिफाफे में एक डाक्टर के नाम पत्र निकला और एक अलग पर्चा मिला । पर्चे में केवल एक ही पंक्ति लिखी हुई थी—‘अशोक सात माह पूर्व हृदय-गति रुक जाने से चल बसे ।’.....

डाक्टर ने मुड़कर देखा । नीलू पर बेहोशी छा चुकी थी ।

डाक्टर ने उसे चारपाई पर लिटा दिया । क्या नीलू यह आघात सहन कर सकेगी ? ईश्वर ने उसका सबसे बड़ा सहारा छीन लिया था । मौत से तो वह बच गई थी, पर उसके जीवन की समस्त खुशियों पर तुषार पात हो गया । उसकी नाव भंवर में घिर गई । आंखों के संमुख अन्धकार मूर्त हो उठा ।

काफ़ी देर बाद उसे होश आया । वह लेटी रही—जीवित लाश की तरह । लेटे-लेटे सोचती रही । और सोचते-सोचते हू-हू रोना शुरू कर दिया ।—‘मैं उस दुर्घटना में क्यों न मर गई ? उस गड्ढे में मरी हुई क्यों न पाई गई ? अब मेरे जीवित रहने में सार ही क्या है ? जब जीवित रहने का आधार ही नहीं रहा, इच्छा और हींस ही मर गई तो फिर जीवित रहने का क्या अर्थ ?

डाक्टर धीरेन्द्र की आन्तरिक वेदना असह्य हो चली थी । वह जानते थे कि उनकी मुंह बोली बेटी पर दुःखों का एक पहाड़ टूट गया है और उसकी जीवन नौका एक ऐसे भंवर में घिर गई है, जहां से उसका बच निकलना सम्भव नहीं है । कितने दुःख उठाये थे उसने और उसका परिणाम यह निकला !

X

X

X

X

डाक्टर से नीलू का दुःख सहन नहीं हो रहा था। उन्होंने उसे अंधकार से बाहर लाने का यत्न किया 'बेटी, तुम कब तक दिल ही दिल में रोती रहोगी? इस शोक के समुद्र में डूबना अच्छा नहीं। तुम्हारी सारी जिन्दगी तुम्हारे सामने है। तुम अभी युवा हो। इन शोक-मागर से बाहर निकलो, बेटी।'।

नीलू बोली—'पिताजी, किसकी जिन्दगी और कैसी जिन्दगी? क्या मैंने इतने कष्ट केवल यह बात सुनने के लिये ही भेले थे? यह खबर मेरे लिये मौत का सामान लेकर आई है।'।

डाक्टर ने कहा—'बेटी, जिन्दा आदमी को यह बात नहीं सोचनी चाहिये। जिन्दगी बड़ी खूब सूरत होती है। फिर तुम्हारी जिन्दगी की तो अभी बड़ी ज़रूरत है। तुम्हें अपने वच्चों के लिये जिन्दा रहना होगा—राहुल और सुनीता के लिये। दर असल तुम्हारी जिन्दगी की शुरूआत ही यहीं से होती है। यही तुम्हारा वास्तविक कर्म-क्षेत्र है।'.....

नीलू के चेहरे पर सहसा आशा की एक हल्की-सी किरण पैदा हो गई। वास्तव में उसे जीवित रहना चाहिये—!

वह आतुर हो बोली—'मेरी सुनीता इस समय कहां होगी?'

'बेटी, मुझे क्या पता हो सकता है—?' डाक्टर ने बुझे स्वर में कहा—'लिखने वाले ने उत्तर में केवल एक ही पंक्ति लिखी थी। मेरे पत्र में भी सुनीता के बारे में कुछ नहीं लिखा हुआ था। यह तो वहां जाकर ही मालूम करना होगा। यदि तुम कहो, तो मैं भी तुम्हारे साथ चला चलूँ?'

नीलू के सीने में जीवन की एक अभूतपूर्व अभिलाषा ने करवट ली। वह स्वयं ही जायगी और पता लगायेगी कि सुनीता इस समय कहां है, किस दशा में है। जहां अशोक नौकर था, वहां से कुछ पता चलेगा। वह सबसे पहले अपने पति के घर जायगी और बाद में ढूँढती-ढूँढती कहीं और। वहां गये बिना सब हाल मालूम न हो सकेगा।

डाक्टर और उनकी पत्नी ने बहुत कहा कि वे भी साथ चलेंगे पर नीलू ने यही उचित समझा कि वह अकेली ही जायगी। अब उसका स्वास्थ्य ठीक है। वह अकेली यात्रा कर सकती है। और उसने दूसरे दिन सुबह ही चलने की सारी तैयारी कर डाली।

जब चलने लगी तो सबके गले लगकर वह खूब रोई।

उस समय हरिया की मां भी वहां उपस्थित थी।

सबकी आंखें बरस रही थीं। एक दिन का यह क्षणिक परिचय इतना घनिष्ठ और अटूट बन्धन की तरह बंध जायगा—यह किसी ने कल्पना न की थी।



*Pair is well
matched*

४:

सवा साल पहले ।.....

अहमदाबाद के स्टेशन पर सौराष्ट्र मेल चलने में पांच मिनट शेष रह गये थे । लाउडस्पीकर पर इसकी घोषणा की जा रही थी । अशोक ने उदास नज़रों नीलू की ओर देखा और कहा—‘नीलू मुझे बहुत चिन्ता रहेगी । तुम डिब्बे में अकेली हो । जब गाड़ी चले तो अन्दर से चिटखनी लगा लेना ।’

और नीलू ने मुस्करा कर कहा—‘डार्लिंग, तुम इस प्रकार परेशान क्यों हो, मैं पहली बार तो सफ़र नहीं कर रही ।’.....

‘हां, मैं जानता हूं, लेकिन पता नहीं डियर, मेरा दिल अप्रत्याशित रूपसे बैठ जा रहा है’ काश, तुम मेरी बात मान लेती और यात्रा का विचार त्याग देती ।

‘अब बार बार यह वहस व्यर्थ है। घर पर भी यह वहस होती रही है।’ नीलू बोली ‘ठीक है’—उच्छवासित स्वर में अशोक ने कहा—‘मैं कुछ नहीं कहूंगा। लेकिन तुमने यह कीमती अंगूठी उंगलियों में पहन रखी है, सफ़र में इन्हें पहनना अच्छी बात नहीं होती।’

‘बहुत अच्छा। जब गाड़ी चलेगी तो मैं इन्हें उतारकर सूटकेस में रखलूंगी।’ सहज मुस्कान में नीलू बोली। उसने कदाचित् यह बात अशोक का दिल रखने को कही थी।

‘ईश्वर के लिये राहुल और ‘अन्नी’ का ख्याल रखना....’।

‘आप बिल्कुल चिन्ता न करें।’

प्लेटफार्म पर घंटी बजी ‘कुछ क्षण बाद गार्ड ने सीटी दी। एंजिन का सायरन चीखा। और गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी। जब तक गाड़ी की रफ़्तार धीमी रही, अशोक गाड़ी के साथ-साथ चलता रहा। आखिर वह रुक गया। बच्चे अन्दर बैठे हुये हाथ हिलाते रहे। अशोक भी हाथ हिलाता रहा। वह उस समय तक गाड़ी को देखता रहा जब तक कि वह अन्धकार में विलीन न हो गई।

अशोक के विवाह को सात वर्ष हो चुके थे, लेकिन उसका प्यार आज भी पहले दिन की तरह ताजा था। वह नीलू के वियोग को कदाचित् सहन न कर सकता था। जब भी नीलू बाहर जाती तो वह खोया-खोया सा रहता। घर उसे काटने को दौड़ता था। नीलू के बिना उसे सारी दुनिया सूनी-सूनी नज़र आती थी।

वह घर आया और फिर थोड़ी देर बाद ही क्लब में जा बैठा।

सुबह उसने रेडियो लगाया तो सुबह की खबरों में सबसे पहले यह खबर दी जा रही थी—आज सौराष्ट्र मेल की रात के ग्यारह बजे के करीब बल्सार स्टेशन के पास दुर्घटना हो गई। दो-तीन डिब्बे पटरी से उतरकर उलट गये और चक्रनाचूर हो गये। अधीकृत सूत्रों से पता चला है कि मरने वालों की संख्या दो सौ से ऊपर है और घायलों की संख्या सौ से ऊपर है।’

अशोक पागलों की तरह उठा और महरी से चीख कर बोला—‘मैं जा रहा हूँ। सुनीता का ख्याल रखना—!’ यह कह, उसने कुछ रुपए महरी के हाथ में थमा दिये और स्वयं भागता हुआ बाहर निकल गया।

रास्ते में ट्रैफिक की लाल बत्ती नज़र आती और वह टैंक्सी रुकने को हो, इससे पूर्व ही पागलों की तरह ड्राइवर से चीख कर कहता—‘तुम लाल बत्ती की परवाह न करो। चलो।’

टैंक्सी ड्राइवर उसकी ओर आश्चर्य से देखता और खामोश रह जाता। अशोक उड़कर घटना स्थल पर पहुँच जाना चाहता था। उसे पता नहीं था कि वायुयान किस समय जाता है। वह सीधा बम्बई पहुँचकर वहाँ से किसी भी गाड़ी में बैठकर घटना-स्थल पर पहुँच जाना चाहता था। टैंक्सी का तुरन्त किराया चुका कर वह एयरपोर्ट के आफिस की ओर आगा। सौभाग्य से लाहौर के लिये जहाज़ उड़ने ही वाला था। उसमें एक सीट खाली थी और अनाउन्सर मि० वर्मा को तुरन्त आकर अपनी सीट पर बैठ जाने के लिये आनाह कर रहा था। उसने भट से टिकट लिया और जहाज़ में बैठ गया।

बम्बई पहुँच कर वह सीधा रेल्वे स्टेशन पर पहुँचा। उस समय एक गाड़ी धीरे-धीरे प्लेटफार्म छोड़ रही थी। उसने हाँफते हुये जल्दी टिकट-कलक्टर से कुछ पूछा और भागकर उस पर चढ़ गया। वह पैसंजर ट्रेन थी। हर स्टेशन पर खड़ी होती। रफ्तार भी बहुत कम थी। अशोक कभी गाड़ी को गाली देता और कभी सम्पूर्ण रेल-विभाग को भला-बुरा कहता। वह जल्दी से जल्दी घटना-स्थल पर पहुँच जाना चाहता था। खिड़की के शीशे से उसने मुँह बाहर निकाला। सूर्य काफी ऊपर चढ़ चुका था।

द्रादर स्टेशन पर अखबार का हाकर चिल्ला रहा था मेल की भीषण दुर्घटना। दो सौ मरे, सौसे ऊपर घायल। उसने अखबार खरीद कर पढ़ना शुरू किया, पर वह पूरी खबर न बढ़ सका। कोई-कोई वाक्य उसकी आँखों के सामने आता— ‘सहायता कार्य जारी है’...

दो डिब्बे बिलकुल चकनाचूर हो गये..... लाशें तख्तों में फस कर रह गई..... ।'

बल्सार स्टेशन पर गाड़ी रुकी । आगे नहीं जा सकती थी, क्योंकि अगले स्टेशन पर दुर्घटना हुई थी । अशोक गाड़ी से उतरा और किसी तरह एक घंटे बाद घटना-स्थल पर पहुँच गया ।

एंजिन जमीन पर गिरा पड़ा था और उसके साथ ही दो डिब्बे भी, जिनके टुकड़े-टुकड़े हो चुके थे । कुछ मजदूर मलवा हटा रहे थे । अशोक ने उस ढेर में कुछ ढूँढ़ने की कोशिश की तो संतरी वहाँ आ गया और सहृदयता-से बोला—'यहाँ आपको कुछ नहीं मिलेगा । सब लाशें और घायलों को अस्पताल पहुँचा दिया गया है ।'

अशोक पूछता-पूछता अस्पताल पहुँचा । वार्ड में उसे नीलू नजर न आई तो वह मुर्दाखाना गया । वहाँ दवाइयों की विचित्र दुर्गन्ध से उसे मितली-सी होने लगी । एक आदमी लाशों के चेहरे से चादर हटाता जाता था और अशोक देखता जाता था । उसके मनो-मस्तिष्क में एक हृदयविदारक भावना काम कर रही थी । कई लाशों के सिर कुचले जा चुके थे । कुछ की टांगें नहीं थी । कुछ-एक बच्चों के मुँह टीन के डिब्बे की तरह पिचक गये थे । वह मन ही मन भगवान से यही प्रार्थना कर रहा था —'हे प्रभू, इनमें नीलू न हो, मेरी नीलू इनमें न हो । मेरी बच्ची इनमें न हो, भगवान ।'.... उसके सारे शरीर में एक कंपकंपी-सी पैदा हुई, जब अस्पताल के कर्मचारी ने कहा—'साहब, यह भी बच्ची की लाश है ' तो उसके कानों की लवें दहकने लगी ।

अशोक ने लाश की ओर देखा । अस्पताल के कर्मचारी ने सलाह दी कि चेहरे को न देखिये तो उचित होगा । अशोक ने टांगों की ओर देखा । बाँये पैर पर तिल का निशान था ।

'हे भगवान । यह मैं क्या देख रहा हूँ.... ?' अशोक ने एक हल्की, संधी हुई चीख मारी—'यह तो मेरी बेटी है—अन्नी ।'

कर्मचारी ने कहा—'साहब, इस युवा स्त्री की लाश भी देखलें । इसके लिये भी विनती करूंगा कि चेहरा न देखें ।

अशोक ने पागल की-सी अवस्था में स्त्री के पैरों की ओर देखा । यद्यपि आज तक उसने उसके पैरों पर कभी कोई निशान नहीं देखा था । कम से कम उसे याद नहीं था कि पैरों पर कोई निशान है ।

‘यदि आप हाथों को देखलें तो शायद पहचानने में मदद मिले—’ यह कर, उस कर्मचारी ने चादर के नीचे से एक हाथ बाहर निकाला । अशोक ने जैसे ही उंगली में हीरे की अंगूठी देखी उसने जोर की एक चीखे मारी—‘नीलू ।’

उसे लगा मानो एक बार सारी घरनी उल्टा चक्कर काट गई । डगमगा कर वह गिरने को हुआ पर कर्मचारी ने उसे थाम लिया । उसके कानों में प्रचण्ड वेग से नाचती पृथ्वी की थरथराहट-सी गूँजने लगी । दूसरा हाथ देखने का उसे हौश ही न था ।

कुछ देर बाद वह मरे-मरे कदम रखता हुआ, और अपने मुर्दा पांव घसीटता हुआ आगे बढ़ा । कर्मचारी ने आगे की अन्य लाशें उसे दिखाई पर राहुल का कहीं पता न था । उसने रोते हुये कहा—‘मेरा एक बच्चा भी था ।’

‘बस, जो कुछ लाशें हैं वो आप देख चुके हैं इनके अतिरिक्त और कोई नहीं है । कर्मचारी ने सहृदयता से कहा—‘आप घायलों के बाडों से तो हो आये हैं ?’

अशोक ने ‘हां’ में सिर हिला दिया ।

कुछ देर खामोशी छाई रही ‘फिर अशोक ने मुर्दाखाने को दुबारा ध्यान से देखने के लिये उस कर्मचारी से अनुरोध किया । वह सहमत हो गया । दूसरी बार देखने पर भी उसे राहुल कहीं दिखाई न दिया । वहां बच्चे की कोई लाश न थी । वह दुबारा घायलों के बाडों में गया पर वहां भी राहुल नहीं था । वह ज्ञान शून्य-सा सिर पकड़ कर बैठ गया ।

उसने काँपती उसांस से विह्वल स्वर में अस्पताल के अधिकारियों से राहुल के बारे में पूछ-ताछ की पर कोई आशाजनक उत्तर न मिला । आखिर उसका क्या हुआ ? न तो वह लाशों में था और न बाडों में । फिर वह कहाँ गया ? वह अवश्य जिन्दा होगा । उसने अपने दिल को

तसल्ली दी । बाहर निकलकर वह उस क्षेत्र के लोगों से मिला, पुलिस में रिपोर्ट भी लिखवाई वह बहुत आश्चर्य में था कि वह अकेला जीवित कैसे बच गया । वह अकेला कहाँ जा सकता है ?

उसने दोनों लाशों को अलग-अलग सन्दूक में बन्द करवाने का प्रबन्ध किया और उन्हें अपने घर ले आया ।

दूसरे दिन उसके घर से दो अस्थियाँ उठीं । घर और मोहल्ले में कोहराम मचा हुआ था । सारे शहर में इस दुखद घटना के—चर्चें हो रहे थे । अशोक के दुख का अनुमान कौन कर सकता है ? उसके जीवन में इतना बड़ा अभाव पैदा हो गया था कि जीवन के शेष दिन उसे खोखले और नीरस नज़र आये ।

अस्पताल के कर्मचारी ने उसे बताया था कि माँ-बेटी दोनों के चेहरे देखने योग्य नहीं रहे, इस लिये उसने घर पहुँच कर किसी को भी यह अनुमति न दी कि कोई सन्दूक खोलकर उन्हें देखे । वह स्वयं अपने मस्तिष्क में केवल उन्हीं हंसते हुये कोमल, सुन्दर फूलों की तरह चेहरों की कल्पना बनाये रखना चाहता था, जो वास्तविक रूप में थे । वह नहीं चाहता था कि कुचले हुये चेहरों को देखकर वह अपनी स्मृतियों में एक और दुख की वृद्धि करले । उसने सुनीता को तो और भी दूर-दूर रखा, महरी के साथ उसके घर भेज दिया । वह छोटी थी तो क्या, बहुत-कुछ तो वह बाता वरण की संवेदना को समझ ही गई थी । उसकी आँखों से निरन्तर आंसू बह रहे थे । महरी सजल आँखों से उसके सिर पर प्यार का हाथ फेर रही थी और मुहल्ले की स्त्रियाँ धीमी, उच्छवासित आवाजों में कह रही थीं—‘बेचारी, अभागिन । अभी से माँ का साया सिर पर से उठ गया —।’ इन्हीं मिली-जुली बातों से, अपने पिता के शोकातुर चेहरे से, कोहराम से उसे वास्तविक परिस्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान हो गया था और उसका मासूम दिल हिलक-हिलक रहा था ।

अशोक माँ-बेटी की दाह-क्रिया के पश्चात् अपने दिल में दाग लिये घर आ गया ।

सात

जब अशोक ने दोनों लाशें अस्पताल में देखीं तो उसका मस्तिष्क बिल्कुल व्यथित हो गया था। आघात की गहराई और तीव्रता के कारण उसे कुछ भी सोचने की शक्ति नहीं थी। पर अब समय गुजरने पर वह बीती हुई घटनाओं पर गौर कर रहा था।.....

नीलू ने एक हाथ में हीरे की अंगूठी पहन रखी थी। वह जब घर से चली तो दोनों हाथों में अंगूठियां थीं। उसने दूसरा हाथ क्यों नहीं देखा? यदि वह उसके विकृत मुँह को नहीं देखना चाहता था तो कम से कम उसका दूसरा हाथ देखकर तो यहा पुष्टि कर सकता था कि उसमें भी शादी वाली सोने की अंगूठी है या नहीं। उसने ऐसा क्यों नहीं किया?

नीलू और अन्नी की लाशें लाशघर में पास-पास रखी हुई थी। राहुल अवश्य नीलू की गोद में होगा या फिर सीट पर पास ही बैठा या सो रहा होगा। आखिर वह कैसे बच गया?.....

वह जैसे-जैसे सोचता, उसका दिल उदास होता चला जाता। कई प्रकार के प्रश्न उसके दिल में उभरते। कई बार आँखों के सामने अंधेरा-सा छाने लगता, वह फिर संभल जाता और अग्रणित यादें उसकी आँखों के सामने नाचने लगतीं। किस तरह खुशियों से भरा घर देखते-देखते बर्बाद हो गया था।

आशा की एक क्षीण-सी किरण उसके सीने के अंधेरों में दबी घुटी रोशनी पैदा कर रही थी—‘मेरा बेटा राहुल अवश्य कहीं ज़िन्दा है। चाहे कहीं भी हो, ज़िन्दा है।’

उसने समाचार पत्रों में विज्ञापन दिये। भारी इनामों की घोषणा की। पुलिस को बार-बार सूचना दी, रेल्वे और पुलिस के अफसर इस मामले में रुचि लेने लगे। बहुत तलाश की गई पर उसके बच्चे का कहीं निशान न मिला।

अशोक एक बीमा कम्पनी के आफिस में काम करता था। उसका सबसे बड़ा अफसर बड़ाही कृपालु और सहृदय था। काफी समय हुआ उसकी पत्नी मर चुकी थी। वह यह जानता था कि पत्नी की मृत्यु से इन्सान किस तरह दुःखी हो जाता है और उसका जीवन कैसा निरर्थक और भार स्वरूप-सा होकर रह जाता है। उसे अशोक से पूरी सहानुभूति थी। उसने अशोक को आज्ञा दे दी कि वह महीने-दो महीने की छुट्टी पर कहीं चला जाए ताकि वह वर्तमान वातावरण से दूर रह सके और उसके दुःखों में थोड़ा परिवर्तन आये।

अशोक कहीं दूर चला जाना चाहता था। यदि वह इसी शहर में रहा तो उसे एक पल के लिये भी चैन प्राप्त न होगा। सम्भव है, दूर चले जाने से कुछ शान्ति प्राप्त हो जाए। उसने अपनी बेटी सुनीता को तो अपने मा-बाप के यहां भिजवा दिया और स्वयं अपने दोस्त के साथ टोकियो चला गया।

टोकियो में वह दिन भर समुद्र के किनारे बैठा रहता। घण्टों एक ही स्थान पर बैठा रहता। लहरों के ज्वार भाटे में खोया, वह अपने

जीवन के भविष्य पर विचार करता रहता। शाम होती तो वापस घर पहुंच जाता। वहां पर भी नीलू की तस्वीर उसके दिमाग से प्रथक न हो सकी। कभी कभी उसके दिल में यह विचार उठता जैसे नीलू अभी जीवित है। वह भला कैसे मर सकती है? वह मुझे छोड़कर कैसे जा सकती है? यह कदाचित् असम्भव है। एक दिन नीलू आकर मुझसे अवश्य मिलेगी। परन्तु फिर वह सोचता कि उसने अपने हाथों से नीलू और अनीता की दाह-क्रिया की है। अब वह मुझे कैसे मिलेगी? वह मुस्कराता हुआ फूल—अनीता? वह सुन्दर, प्रिय चेहरा—नीलू? अनीता कैसी तुलनाती हुई मुझे पापा कहा करती थी। नीलू उसके जन्म पर कितनी उदास हुई थी। उसका अनुमान था कि बेटा पैदा होगा और मैं उसके जन्म पर कितनी खुश हुआ था। जब गाड़ी चली तो वह मुझे कैसे उदास नेत्रों से देखती हुई हाथ हिला-हिलाकर 'टा-टा' कर रही थी। उस दृश्य को याद करके अशोक ने बच्चों की तरह रोना शुरू कर दिया।

वह रोज़ इन्हीं विचारों में डूबा, समुद्र की लहरों को देखता रहता और फिर एक पल के लिये उसे विचार होता कि यदि मैं भी इन लहरों की गोद में जाकर सोजाऊं और यह लहरें मुझे अपनी अथाह गहराइयों में छिपालें तो कैसी शान्ति पूर्ण बात होगी। पर दूसरे ही क्षण उसे सुनिता का खयाल आ जाता। उस निःस्साहाय, निरावलम्ब बच्ची का इस इतनी चौड़ी दुनिया में मेरे अतिरिक्त और कौन है?

अशोक वापस लौट आया और तार देकर सुनिता को बुलवा लिया। उसके स्वास्थ्य में कोई अन्तर न पड़ा था, बल्कि पहले की अपेक्षा वह और बुर्बल प्रतीत होता था। सिगरेट और शराब का प्रयोग सीमा से बढ़ रहा था। वह हर समय अपने ही घर में पड़ा रहता और अपने ही विचारों में डूबा हुआ जीवन की खुशियों से किनारा कर चुका था।

अशोक का अफसर भी अमरीका गया हुआ था। वह तीन महीने बाद लौटा। आते ही जब उसने अशोक की हालत देखी तो वह आश्चर्य

वर्कित रह गया । उसका विचार था कि बाहर चले जाने से अशोक का स्वास्थ्य अच्छा हो जायगा और अपने दुःख भुलाकर नये सिरे से जीवन व्यतीत करने का वह प्रयास करेगा । पर उसका स्वास्थ्य तो और भी गिर गया था । उसे पहचानना कठिन हो गया था ।

एक दिन उसने अशोक को पास बुलाकर कहा—‘देखे अशोक, यदि तुम इसी प्रकार दुःख में डूबे रहे तो मर जाओगे । देखते नहीं, तुम्हारी हालत क्या हो गई है ? आज तुम मेरे साथ ही घर पर खाना खाने आना । वहीं बातें होंगी ।’

‘बड़ी कृपा है आपकी—’ बहुत ही विनम्र होकर अशोक ने कहा—‘किन्तु’.....

‘किन्तु विन्तु कुछ नहीं—’ बीच ही में आदेशात्मक ढङ्ग में साहब ने कहा—‘दफ्तर से उठकर तुम मेरे साथ ही चलोगे ।’

उसने ने कहा—मुझे अपनी बेटी सुनीता को स्कूल लाना होगा, सर !’

‘हां, उसे तो जरूर लाना होगा—’ अफसर ने कहा—‘ठीक यही रहेगा कि स्कूल जाकर उसे भी अपने साथ ही हमारे यहां लेकर आओगे तुम । मेरी भी लड़की है, वह उस बच्ची से मिलकर बहुत खुश होगी । तुम जानते नहीं मेरी बेटी को । वह बच्चों को बहुत प्यार करती है ।’

अशोक निरुत्तर रह गया । क्या कहता ?

पत्नी की मृत्यु के बाद मिस्टर रंगीलाल ने दूसरी शादी नहीं की । वह अपनी बेटी अंजना के ही लिये जीवित थे । बेटी की आयु इस समय बीस वर्ष की थी । मिस्टर रंगीलाल ने उसके पालन-पोषण में कोई कसर बाकी न छोड़ी । बहुत लाड़-प्यार से पाला । उसने जो मुंह से मांगा, वही उसे दिया । माँ की अनुपस्थिति में उसे माँ का प्यार देने की भी चेष्टा की । मिस्टर रंगीलाल जितना प्यार अपनी बेटी से करते थे, उसका अनुमान अत्यन्त कठिन है । कुछ दिन हुये एक बड़े ठेकेदार के बेटे से जो इन्जीनियर था, उसके सम्बन्ध की बात-चीत चल रही थी ।

सगाई का दस्तूर भी होने वाला था। रंगीलाल जी का विचार इसी वर्ष शादी करने का भी था। यह भी एक ज़रूरी काम था—पिता का वर्म, जिससे वह निवृत्त होना चाहते थे। वह अपनी बेटी के दहेज के बारे में नए 'आइडिया' सोचते रहते थे।

अंजना ने भी अपने पिता के मुँह से अशोक की पत्नी और वच्ची की उस आकस्मिक मृत्यु की खबर सुन ली थी। इस शोक पूर्ण दुर्घटना पर उसे अत्यन्त दुःख हुआ और वह मन ही मन अशोक के प्रति सहानु-भूति का भाव रखने लगी थी। और आज जब उसके पिता ने उसे सूचित किया कि अशोक उसकी वच्ची सुनीता के साथ खाने पर उसके यहाँ आने वाला है, तो वह विचित्र-सी भावनाओं से अभिभूत हो गई!

शाम के सात बजे बाहर दरवाज़े पर दस्तक सुनाई दी। नौकर ने तुरन्त जाकर दरवाज़ा खोला और अशोक ने सुनीता के साथ रंगीलाल जी की शानदार कोठी में प्रवेश किया।

आठ

नौकर ने अशोक को ड्राइंग-रूम में बिठा दिया ।

‘बेटी अंजना, अशोक आगया ?’ गुसलखाने में से रंगीलाल जी का स्वर सुनाई दिया ।

‘जी आ गये ।’ किसी का बहुत ही मीठा स्वर आया ।

‘ठीक मैं अभी नहाकर आया । रंगीलाल जी का स्वर पुनः सुनाई पड़ा—‘देखो, उसके साथ एक प्यारी-प्यारी-सी बच्ची भी आई होगी । इतने तुम इससे बातें करो ।’

‘जी अच्छा ।’ वही मीठा स्वर ।

और दूसरे ही क्षण मीठे स्वर की वह मालकिन ड्राइंग-रूम में उपस्थित थी ।

काजल से अंजी हुई फैली-फैली आँखें, कुछ अधमुं दी और लम्बी आँखें निर्देश-सी दीखने की चेष्टा में रत : औरों के साथ अपने को भी छलाती

हुई। गोलाई लिये खुले होंठ। एक कोर पर ज़रा अधिक-सी खिंची मुस्कानें।

उसने मुस्करा कर हाथ जोड़ लिये।

अशोक ने हड़बड़ा कर प्रत्युत्तर में नमस्कार किया और वैसे ही पूछ लिया—“साहब कहाँ हैं?” और फिर दूसरे ही क्षण अपने प्रश्न की निरर्थकता पर सोचता रह गया।

‘जी, अभी स्नान करके आते हैं—’उसने परिमार्जित मुस्कान में कहा और फिर दूसरे ही क्षण सुनीता को अपने साथ घसीटती हुई ड्राइंग-रूम से भाग छूटी।

अशोक ने महसूस किया जैसे उसके कानों की लबें दहक रही हैं। उसने एक लम्बी सांस छोड़ी। थोड़ी देर बाद साहब आ गये।

अशोक को उद्विग्न देखकर अंजना मन ही मन दुःखी हुई। वह अशोक के व्यक्तित्व से प्रभावित हुई। कई विचार उसके मन में उठे और गिरे।

सुनीता थोड़ी ही देर में अंजना से घुल मिल गई। दोनों में परस्पर इधर-उधर की बातें होती रहीं—खेल-कूद की, स्कूल की। दोनों ने फिर साथ बैठकर खाना खाया।

सुनीता ने हंसकर कहा—‘आपकी शक्ल मेरी मम्मी जैसी है।’

‘अच्छा?’ पुलक विभोर हंसी में अंजना बोली। और फिर जैसे उसके मुँह पर कोई बादल आ गया।

हूँ—सुनीता ने आँखें झुकाकर, उदास होते हुये कहा—‘कभी हमारे यहाँ आओगी तो मैं आपको अपनी मम्मी का फोटो दिखाऊंगी।’

‘मुझे अपने घर बुलाओगी?’

‘क्यों नहीं?’

‘तो मैं भी जरूर आऊंगी। समझे?’

‘जी ।’

‘अच्छा, यह बताओ तुम्हारी मम्मी कैसी थीं ?’

‘कहा न, तुम जैसी । प्यारी प्यारी ।’

‘तुम्हें बहुत प्यार करती थीं ?’

‘हां—गर्दन हिलाकर, रुआंसी होकर सुनीता ने कहा—‘हम सबको बराबर प्यार करती थीं—मुझे, अन्नू को, भैया राहुल को ।’

अंजना ने आँखें भुका लीं । सुनीता को झट से गोद में खींचकर गले से लगा लिया और उसे चूमा । उसने मन ही मन सोचा, वच्ची को प्यार की जरूरत है । प्रत्यक्ष में विगलित कण्ठ स्वर में कहा—‘कल तो इतवार है । तुम्हारी छुट्टी होगी ?’

‘जी ।’ सुनीता ने कहा ।

‘कल हमारे यहां आओगी ?’ उत्सुक हो, प्यार सहित अंजना ने पूछा ।

‘रोज़—रोज़ ?’ सहज, सरल, निर्दोष भाव में सुनीता बोली ।

‘क्यों ? क्या हो गया ; मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती ?’

‘लगती तो हो ।’

‘फिर ? बोलो, कल आओगी ना ?’

‘पापा से पूछूंगी । भेज देंगे तो आजाऊंगी ।’

‘मैं तुम्हें पापा से इजाजत दिलवा दूँ । हमारा नौकर तुम्हें लेने आजायगा ।’ सुनीता ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया ।.....

अशोक जब जाने के लिये उठ खड़ा हुआ तो सुनीता को लिये अंजना भी वहाँ आ पहुँची । उसने अशोक की ओर देखा । अशोक अपने होठ दांतों से काट रहा था । उसकी आँखों में बहुत दूर की कल्पना चमक रही थी । उसने आँखें भुका लीं ।

अंजना ने धीरे से अपने पिता को कहा—‘पिताजी, कल इतवार है ।

सुनीता के स्कूल में छुट्टी होगी । अशोक जी से कहिये कि कल इसे यहाँ भेज दें । मैं लाने के लिये नौकर को भेज दूंगी । पिता ने मुस्कराकर अशोक की ओर देखा ।

अशोक ने मन ही मन सोचा कि अंजना उसके अफसर की बेटी है और यह उचित नहीं कि वह मेरी बेटी के लिये इतनी सुविधा सहन करें । प्रत्यक्ष में वह सकुचाता हुआ बोला—पर आपको व्यर्थ ही असुविधा होगी, कष्ट होगा ।’.....

मुझे कष्ट नहीं अपितु सुख होगा—‘अंजना ने भट वात काट दी ।’ अशोक निरुत्तर हो गया और फिर कृतज्ञता पूर्ण नेत्रों से अंजना को देखता हुआ और ‘सर’ को प्रणाम करता हुआ चल दिया ।’.....

दूसरे दिन अंजना ने सुनीता से नीलू के बारे में बहुत सी बातें मालूम की । जो कुछ उस बच्ची से मालूम हो सका वह यही था कि नीलू एक सुन्दर युवती के साथ-साथ एक सुन्दर माँ थी और बड़ी हंसमुख थी । वह अपने बच्चों से बहुत ज्यादा प्यार करती थी और उनकी हर बात पर नज़र रखती थी—उनकी सुविधा-असुविधा का ध्यान रखती थी ।

जब शाम को अशोक अपनी बच्ची को लेने आया तो वह आश्चर्य चकित रह गया । सुनीता जो माँ का वियोग और अभाव बुरी तरह अनुभव करती थी और हर समय उदास बनी रहती थी । आज प्रफुल्ल नज़र आ रही थी । न केवल यह, बल्कि उसकी पहली-सी चंचलता भी लौट आई थी । वह दिल में सोचने लगा—बच्ची को अवश्य ही माँ के प्यार की ज़रूरत है । अंजना ने प्यार दिया होगा.....तो सुनीता की आत्मा में वह खुशी व्याप्त हो गई घर आकर, सोते समय उसने सुनीता से पूछा—‘बेटी, तुम अपनी दीदी के यहाँ जाकर रहोगी ?’

सुनीता ने मुँह बनाया—‘मैं नहीं जाऊंगी पापा । मैं तो आपके पास ही रहूंगी ।’ अशोक चुप हो गया ।

अब सुनीता का यह नित्य का नियम हो गया था कि स्कूल से

लौटते समय अंजना के घर होकर, उससे मिलकर आती । वह हंसती-खेलती और छलांगें लगाती हुई जाती और अंजना से लिपट जाती ।

अशोक भी दफ्तर छोड़ने के बाद अंजना के यहां पहुँच जाता । कुछ देर वहाँ बैठकर वह बातें करता रहता । वह यह अनुभव करता कि किस तरह समय उड़ा चला जा रहा था । हर विषय पर वह बातें करते । कला, साहित्य, कविता, फ़िल्म और अन्य सामाजिक विषयों पर । अंजना मन में, अपने अन्तस् में सहानुभूति का भाव लिये ध्यान से बातें सुनती । अशोक अपने भीतर एक नई लगन-सी अनुभव करने लगा । नीलू की मृत्यु का शोक जो उसे धुन की तरह खाये जा रहा था । अब कम होने लगा और वह कुछ खुशी और कुछ तसल्ली-सी महसूस करने लगा ।

वह कभी २ इसका स्रोत ढूँढता । विश्लेषण करता कि इसका कारण क्या है ? वह दिल ही दिल में एक बात सोचने पर विवश हो जाता पर तभी वह इस विचार से अपने आपको बहुत दूर ले जाता । वह सोचता—कहीं वह ऐसे रास्ते पर तो नहीं जा रहा जो इस अवसर पर कदाचित् अनुचित हो ? वह कृतघ्न नहीं बनना चाहता था और जिस चरण से गुज़र आया था, उसके पश्चात् उसकी ऐसी कुछ धारणा हो गई थी कि उसे जीवन पर्यन्त कष्ट उठाना चाहिये और अपनी बच्ची के हितार्थ एकान्त जीवन व्यतीत करना चाहिये । इन विचारों से वह अपने आपको सुदृढ़ बनाने की चेष्टा करता पर परिस्थितियाँ इस तरह धीरे-धीरे अपना एक नया स्थान पैदा कर रही थीं । वह कभी कुछ फ़ैसला करता और कभी अपने ही फ़ैसले की गुत्थियों में डलभन कर रह जाता ।

रंगीलाल जी ने भी यह महसूस किया कि अंजना की बात तो एक इन्जीनीयर से पक्की होने जा रही है पर वह सहानुभूति और प्यार के मैदान में उतर कर एक ऐसे रास्ते पर तेज़ी से जा रही है जिसके अन्त में खतरनाक घाटियाँ और भीषण जंगल हैं । कहीं वह और कुछ

फैसला न कर बैठे' इस शब्दा से अभिभूत होकर एक दिन उन्होंने अपनी युवा बेटी को इशारों ही इशारों में कह दिया—'बेटी, तुम जानती हो, मुझे तुमसे कितना प्यार, कितना स्नेह है ?'

'जी पिताजी । इसमें सन्देह की क्या बात है ?'

'पर मुझे एक बात का शक हो रहा है ।'

'वह क्या ?'

अशोक एक खूबसूरत जवान लड़का है और मेरा मतलब.....'

'पिताजी, आप कैसी बातें कर रहे हैं ? मुझे तो केवल सुनीता से प्यार हो गया है और उनसे सहानुभूति—वस ।'

'पर.....' चिन्तित, उच्छ्वासित स्वर में पिता बोले—'यह सहानुभूति कहीं धीरे-धीरे किसी और भावना में नहीं बदल जाए बेटी—यह कह, रंगीलालजी उसके कमरे से चल दिये ।

अंजना अवाक्, विस्मित खड़ी अपने पिता को देखती रही ।

नौ

अंजना की सहानुभूति की जड़ें धीरे-धीरे बहुत गहरी चली गईं। अब अशोक और अंजना सुनीता को अपने साथ लेकर बाहर निकल जाते। देर तक इधर-उधर घूमते रहते, विशेष तौर पर जब कि रंगी-लाल जी कहीं दौरे पर गये होते। पर उनमें ऐसी कोई बात न हुई जो उनकी मानसिक भावनाओं को प्रकट करती। दोनों के भीतर एक तेज पिघलता हुआ विचार तो था पर दोनों अपनी-अपनी जगह मौन और सावधान थे। अंजना यह अच्छी तरह जानती थी कि उसकी वह सहानुभूति, और करुणा अब कोई दूसरा ही रूप ग्रहण करती चली जा रही है। पारस्परिक मिलन की वह प्रथायें अब बहुत घनिष्ठ और प्रिय और गहरी हो गई हैं। अब वह एक और स्थान पर आ गई हैं।

दूसरी ओर अशोक समझता था कि अंजना और सुनीता के पारस्परिक प्यार के कारण वह अंजना में रुचि नहीं ले रहा बल्कि वह अंजना

की ज़िन्दगी के इतना निकट आता चला जा रहा है कि अब पीछे हटना या पीछे मुड़कर देखना बहुत ही दुष्कर हो गया है। वह अपने उपकारी 'सर' के उपकारों के विचार से थरा उठता था। वह दिल में क्या सोचेंगे ?

रंगीलाल जी ने भी धीरे-धीरे देखा कि मामला सीमा से बढ़ रहा है और दो आत्मायें इस कदर आगे जा चुकी हैं कि शायद उन्हें वापस लाने में अभी उतनी कठिनाई न हो। यही बात सोचते हुए एक दिन उन्होंने अपनी बेटी से कहा—'बेटी अंजना, मैं ज्यादा दिन इन्तज़ार न कर सकूंगा। एक दो दिन में ही तुम्हारी सगाई की तारीख निश्चित कर रहा हूँ। इसके थोड़े दिन बाद ही अच्छा-सा मुहूर्त देखकर तुम्हारे विवाह की तिथि भी निकलवाना चाहता हूँ। यह सब बातें मैं स्वयं तुमसे इसलिए कह रहा हूँ बेटी, क्योंकि तुम्हारी माँ इस संसार में नहीं है और तुम जवान हो, ऊँच-नीच समझती हो।'।

अंजना की आँखों के सामने पल भर के लिये अंधेरा-सा छा गया। वह पहली बार विक्षिप्त-से स्वर में बोली—'पिताजी, अभी इन सब बातों की जल्दी क्या है ? अगर आप मुझे अपने घर से जल्दी निकालना चाहते हैं तो और बात है। मैं आप पर ऐसा कोई कष्ट प्रद बोझ तो नहीं ?' और उसकी आँखें छलछला आईं।

'यह बात नहीं बेटी' ज़रा ठंडे दिमाग से सोचने की कोशिश करो। बेटीयाँ आजतक संसार के किसी भी माता-पिता के लिये बोझ न हुईं। पर ऊँच-नीच का ध्यान रखते हुए संसार और समाज के बीच रह कर, हर माता-पिता को अपने धर्म का पालन करना होता है। एक स्थल ऐसा आता है जब पिता को और माँ को उसी बेटी से पृथक् होना पड़ता है, जो उनके ज़िगर का टुकड़ा होती है। बेटी सदा पराया धन होती है। समय पर उसके पीले हाथ कर देना ही माँ-बाप का प्रमुख धर्म होता है बेटी.....

अंजना पर-कटे पक्षी की तरह फड़फड़ा कर रह गई।

रंगीलाल जी ने मन ही मन यह भी निर्णय कर लिया था कि वह अशोक का किसी दूसरी जगह 'ट्रांसफर' करवा देगे। यह बात उन्होंने गोपनीय ही रखी।

जब दूसरी भेंट में अंजना ने अशोक को अपने पिता का निर्णय सुनाया और बताया कि उसकी सगाई और शादी वह जल्दी ही कर डालने के लिये उत्सुक हैं तो वह गहरे विचारों में डूब गया। वह शोक के अथाह अंधेरों से तो बड़ी मुश्किल से निकला था और अंजना धीरे-धीरे उसे प्रकाश की मीनारों के समीप ले आई थी। उसे सहसा यों लगा जैसे बड़ी ऊंचाई से वह एक दम नीचे आ गिरा है। अंजना की तो शादी किसी और से होने वाली है। उसका निर्णय भी लिया जा चुका है। आज उसने पहली बार अंजना और खुद के बारे में यथार्थ के प्रकाश में सोचा। उसने यह सब पहले ही क्यों नहीं सोचा?

उसकी नाव भीषण तूफान के हिचकोले खाती रही। सहसा एक विचार ने उसे सहारा दिया। तूफान थम गया। क्या वह नीलू को यों शीघ्र ही भूल जायगा। उसने नीलू से इतना प्यार किया था कि बाग का पत्ता पत्ता चीख उठा। एक-एक डाली इस बात की साक्षी थी। क्या वह अब किसी और लड़की से प्रेम कर सकेगा? वह कौनसे पथ पर अग्रसर हो रहा है? वह किस मंजिल पर जाना चाहता है?

नीलू की दुर्घटना को अब एक वर्ष होने आया था। और इस काल में एक पल के लिये भी उसे चैन प्राप्त नहीं हुआ था। क्या इतनी जल्दी वह सब भूल जायगा? क्या वह अपने उस शाखत प्रेम के लिये कुछ भी प्यार और बलिदान नहीं कर सकता? क्या वह इतना स्वार्थी और आत्म-तुष्ट है?—ये प्रश्न बराबर उसके चेतन-मानस में उभरते रहे।

'क्या सोच रहे हैं आप?' अंजना ने नीरवता को भंग करते हुए पूछा।

'कुछ नहीं—' अशोक ने लम्बा उच्छ्वास छोड़ा।

‘यह बात सुनकर आपने मुझे बघाई भी नहीं दी?’ अंजना ने उसकी आँखों में आँखें डालते हुए कहा ।

अपनी आँखों के आन्तरिक हाहाकार को किसी प्रकार छिपाये रखने का यत्न करते हुए, उसने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया और सूखी हंसी में बोला—‘मेरे जैसे टूटे दिल की बघाई लेकर आप क्या कीजियेगा ? किसी तुष्ट दिल की बघाई तो फिर भी सवार कर रखने योग्य होगी ।’

और अंजना यह मार्मिक बात सुनकर हिल उठी । जैसे उसकी पसलियों में किसी ने कोहनी मार दी हो । उसने सोचा, नीलू एक आदर्श पत्नी थी । अशोक के दिल में अब तक उसके लिये एक ऊँचा स्थान है । वह उसके हृदय पर अब भी आसीन है । वह अपनी पत्नी को कभी नहीं भूल सकता और मैं किसी भी हालत में नीलू का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती । मुझ में वह बात ही नहीं ।..... यही बातें थीं, जिनके कारण वह आज तक भी, और इस समय भी अपनी आन्तरिक भावनाओं को, दिल की बात को अशोक पर प्रकट करने में असमर्थ ही रही । उसके समस्त तूफ़ान होठों ही में क़ैद रहे और बाहर न फट सके ।

अशोक का दृष्टिकोण था कि यदि उसने अपने हृदय की ज़रा भी दुर्बलता प्रकट की अथवा अंजना को यह आभास होने दिया कि वह उसकी ओर बहुत कुछ आकर्षित हो चुका है और ज़रा से बढ़ावे की देर है, तो संभव है अंजना बुरा मान जाये । शायद वह यह कह बैठे—‘देखो मिस्टर अशोक, मैंने तो तुम पर तरस खाया था, तुम्हारे प्रति सहानुभूति प्रकट की थी, तुम्हारी बेटी को प्यार किया था और तुमने इन सब बातों का लाभ उठाते हुए, मुझे यह इनाम दिया ।..... और सदैव यही विचार—यहां तक कि आज भी यही विचार उसे एक संक्षिप्त-सा वाक्य—‘मुझे तुमसे प्यार है अंजना.....’ कहने से रोकता रहा ।

दोनों चुप, नीरव मौन बैठे रहे । दोनों के सीनों में एक आग सी सुलगती रही । आखिर कुछ देर बाद, अशोक ने निस्तब्धता भंग की—‘आज ‘सर’ ने मुझे आफ़िस में बुलाकर एक बहुत ही नेक सलाह दी ।...’

‘कैसी सलाह?’ उत्सुक हो, अंजना ने पूछा ।

‘बुलाकर कहने लगे कि वह मेरा ट्रांसफर दूसरे शहर में कहीं कर रहे हैं । मुझे सलाह दी कि इस ट्रांसफर को स्वीकार कर लेना, मेरे लिये हितकर होगा । यह भी कहा कि मुझे यह शहर जल्दी से जल्दी छोड़ देना चाहिये, इसी में भलाई है ।’ यह कह, अशोक खोखली हंसी हंस पड़ा ।

किसी अज्ञात शक्ति ने मानो अंजना को गर्म सलाख छुआ दी । वह भीतर ही भीतर तड़प उठी । व्यग्र हो बोली—‘फिर आपने क्या कहा?’

‘मेरे पास कहने को था ही क्या?’ अशोक यों हँसा मानो आँसुओं के भीतर से हंस रहा हो—‘मैं क्या कहता?’ वह अपने हाथों को अन्यमनस्क होकर मसलने लगा ।

‘आप कुछ नहीं बोले?’ और आवाक्, विस्मित हो अंजना उसका मुँह ताकने लगी । अशोक ने निरर्थक भाव से गर्दन हिला दी । उच्छ्वासित स्वर में बोला—‘कुछ नहीं बोला—’

अंजना के दिल में एक तूफान उठा । अशोक दूसरे शहर में जा रहा है । वियोग का दुःख उस पर आच्छन्न था । एकाएक उसका आज तक का क़ैद तूफान होठों की राह फट पड़ा—‘आपको कुछ तो कहना था—खुद के लिये—कम से कम मेरा जो प्यार है सुनीता से—उसीके लिये ।’

‘सुनीता से जो प्यार है आपका, आपने जो भी प्यार दिया है उसे—उसके लिये बहुत बहुत आभारी हूँ मैं आपका ।’

‘बस, इतना ही.....?’ जैसे कुछ कहना चाह कर भी वह कह न सकी’

‘आपका यह अहसान मेरी गर्दन पर उधार रहेगा ।’ अशोक ने दिल की गहराई से जैसे यह बात कही ।

अंजना की आँखों में हल्के-हल्के आँसू तैरने लगे ।

‘मैं आपको कभी नहीं भूल सकूँगा ।’

‘सच कह रहे हैं?’ दिल की गहराई से जैसे उसने यह बात पूछी ।
 ‘सच कहता हूँ । मेरा विश्वास करो ।’ भावातिरेक में अशोक बोला—‘एक बार अपने को भूल सकता हूँ पर आपको नहीं ।’

अंजना की आंखें सुख के आवेग में नम हो आई । उसने दृष्टि झुका ली । उसके कपोल रक्तिम हो उठे । बोली—‘आप जो विश्वास दे रहे हैं, वही अवलम्ब रहेगा मेरा—।’

‘मैं बीच-बीच में आया करूँगा । मिलता रहूँगा आपसे ।’

‘सुनीता को भी लाया करेंगे न?’ विकम्पित स्वर में अंजना ने पूछा ।

‘क्यों नहीं? जरूर लाऊंगा उसे भी ।’

‘यदि मैं पापा से आपका ‘ट्रांसफर’ रद्द करने को कहूँ तो—?’ एका-एक अंजना ने पूछा ।

‘नहीं-नहीं । ऐसा मत कहियेगा । वह मुझे बहुत चाहते हैं । सबसे मेरी प्रशंसा करते रहते हैं—‘अशोक बड़ा मेहनती, ईमानदार और होशियार युवक है । इसका भविष्य उज्ज्वल है । आप कहेंगी तो उनकी मेरे प्रति जो भी राय है, बदल जायगी । मैं उनकी नज़रों से नहीं गिरना चाहता—।’ अशोक ने दृढ़ स्वर में कहा ।

कुछ-एक क्षण पश्चात् अशोक बोला—‘सर’ कह रहे थे कि मेरा ट्रांसफर हो जाने पर उनकी एक बड़ी समस्या हल हो जायेगी । अतः आपसे मेरा और भी अनुरोध है कि इस सम्बन्ध में उनसे कोई ज़िक्क न करें ।

‘एक बड़ी समस्या हल हो जायगी.....?’ अंजना ने प्रतिध्वनि के समान बात को दोहराई और फिर एक विचित्र-सी हंसी हँस पड़ी ।

अशोक केवल उसका मुँह देखता रह गया ।

थोड़ी देर बाद वह वहाँ से चल दिया ।

दस

अशोक ट्रांसफर पर दूसरे शहर में चला गया । यह उसके और अंजना के लिये एक कठिन समस्या थी, पर दोनों ने मुँह से एक शब्द भी न निकाला ।

अंजना ने अपने दिल की बात बहुत ही सरल, निर्वोध और निरर्थक शब्दों में कहनी शुरू की । वह सुनीता को पत्र लिखती । सुनीता की ओर से यदि ज़रा-सा विलम्ब हो जाता तो वह फिर पत्र लिखती । उधर अशोक एक क्षण को भी अंजना को नहीं भुला सका । वह अपनी बेटी को लेकर बैठ जाता और अंजना को पत्र लिखवाता । वह थोड़े-बहुत टूटे-फूटे वाक्य स्वयं लिखती और कहीं यह वाक्य ठीक करवा कर लिखवाता । आखिर पत्रों का यह आदान-प्रदान बन्द हो गया ।

तीन-एक महीने गुज़र गये । अशोक ने दिल में सोचा कि अंजना की शादी हो चुकी होगी । वह समाचार पत्रों की छान बीन करता रहा ।

बड़े आदमी की बेटी है, अव्वारों में तो खबर अवश्य छपेगी, पर न कहीं कोई खबर ही थी और न कहीं फोटो। उसने सोचा, हो सकता है रंगीलालजी ने यह खबर जान बूझ कर छपने को न दी होगी।

कभी-कभी वह इतना बेचैन हो जाता कि उड़कर अंजना के पास पहुँच जाय, पर दूसरे पल ही सोचता कि अब वह किसी और की हो चुकी होगी। वह उसकी कल्पना क्यों करे ? यह पाप है।

सोचते-सोचते वह इतना परेशान और बेचैन हो गया कि उगने एक सप्ताह की छुट्टी ली और अंजना को देखने के लिये चल दिया। वहाँ पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि अभी अंजना की शादी नहीं हुई है। एक अव्यक्त-सी खुशी उसे हुई। एक बड़ा बोझ उसके दिल और दिमाग से उतर चुका था। वह सोचने लगा, अभी तक अंजना की शादी नहीं हुई। आखिर क्या बात है ? उसने अब तक शादी क्यों नहीं की ? बार-बार उसके मस्तिष्क में प्रश्न उभरता और जहाँ भी अंजना की कल्पना उसकी आँखों के सामने आती, उसे यों लगता मानो वह उसके साथ सुहाग का जोड़ा पहने खड़ी है। वह सिहर उठता।

रंगीलाल जी ने इस अवधि में पूरे यत्न किये—‘बेटी, मैं तुम्हारे मंगेतर राजेश को अच्छी तरह जानता हूँ’। बड़ा नेक, खूबसूरत लड़का है। खानदानी है। ऊँचे पद पर है।.....’

‘होगा—’ असहिष्णु भाव से अंजना ने उत्तर दिया।

‘बेटी, तुम आखिर क्या चाहती हो ?’

‘मैं यदि चाहूँ भी तो उसे प्यार नहीं कर सकती। मैं बहुत ही विवश हूँ पिताजी।’

‘बेटी, तुम भूल रही हो कि तुम अपने पिता से बातें कर रही हो। यह प्यार-व्यार सब व्यर्थ की चीजें हैं। हमें समाज में रह कर समाज की नींव नहीं कुरेदनी चाहिये। हमारी जो खानदानी परम्परा है, उसी की रीति का हमें पालन करना चाहिये। कुल और मर्यादा की लाज भी कोई चीज है बेटी।’

‘आप समाज की बात कह रहे हैं पिताजी—समाज चन्द आदमियों की ही तो जागीर है। विवाह का सच्चा अर्थ दो हृदयों, दो आत्माओं का वास्तविक मिलन ही तो होता है पिताजी, जिसमें पति पत्नी को पत्नी पति को अपना सर्वस्व अर्पण करती है। केवल मंत्र पढ़ लेने से और वेदी के गिर्द भंवर खा लेने से ही तो खानदानी परम्परा और उसकी रीतियों का पोषण नहीं हो सकता। यदि ऐसा हो सकता है तो यह सब पंगु हैं—समाज, हमारी वंशनीय परम्परा, रीति-रिवाज यह सब सड़-गल गये हैं।……’ अंजना का स्वर भावावेश से कांपने लगा।

रंगीलाल जी को एकाएक विश्वास ही न हुआ कि यह उनकी बेटी अंजना ही है अथवा कोई। और अपने ऊपर किसी प्रकार काबू रखते हुए, वह अप्रतिम स्वर में बोले—‘बेटी, तुम मुझे जान से भी अधिक प्रिय हो। क्या तुम समझती हो कि मैं तुम्हारे लिये कभी भी, किसी भी परिस्थिति में एक ऐसा वर पसन्द करूंगा, जो तुम्हें जीवन पर्यन्त खुश न रख सके?’

‘यह मैं जानती हूँ पिताजी, पर मेरा ऐसा कुछ विश्वास है कि न मैं उसे खुश रख सकूंगी और न वो मुझे।’

‘मैं खूब समझता हूँ अंजना—’ पिता का स्वर कुछ तीव्र हुआ—‘कि तुम कौन से रास्ते पर जा रही हो। जब से तुम अशोक से मिली हो, उसके संसर्ग में आई होतुम बदल गई। इससे पहले मैंने तुम्हें कभी भी ऐसी विचित्र बातें करते हुए नहीं सुना था।’

‘पिताजी, अच्छा तो यही होगा कि इस विषय पर हम और बातें न करें। आपको दुःख होगा और मुझे भी।’

‘अब मैं लड़के के पिता को क्या जवाब दूंगा? उन्हें अपना कौनसा मुँह दिखाऊंगा?’ पिता अस्थिर भाव से, क्षोभ और घुटन के धुँआ से भरे, कमरे में टहलने लगे।

अंजना नीरव शान्त बैठी थी।

‘समाज में ज़िन्दा रहना मुश्किल कर दिया है, तुमने मेरा—’ वह

उद्वेलित स्वर में कह रहे थे—‘तुमने खानदान की इज्जत और आवर को मटिया-मेट कर दिया है अंजना । तुमने ठीक नहीं किया है—’

‘यह मेरे जीवन का प्रश्न है पिताजी । खानदान की इज्जत और आवर गौण वस्तुएं हैं—’ दबी आवाज़ में अंजना ने कहा

‘मैं भी देखता हूँ कि अपने जीवन को तुम जिस जीवन से बांधने का निश्चय और संकल्प कर चुकी हो—कहाँ तक कल्याणकारी सिद्ध होगा । समय तुम्हें स्वयं दिखायेगा ।.....’

अंजना की आँखें छलक उठीं । उसके हृदय के मर्म ने, एक अब तक चलते आये आन्तरिक द्वन्द्व ने, पहली बार उसे पिता के सम्मुख मुँह खोलने पर विवश किया था और पिता के विरुद्ध यह निश्चय और मोर्चा लेने के लिये प्रस्तुत किया था । यह तो सब यथाविधि सम्पन्न हो गया पर इसके तुरन्त बाद ही उसका संकल्पी हृदय अज्ञात भावी आशङ्काओं से भर उठा ।

आखिर वही हुआ जो अंजना चाहती थी । पहले तो शादी स्थगित होती रही, मंगनी टलती रही और फिर बात का सूत्र टूट गया । उसने सुनीता को पत्र लिखना बन्द कर दिया था । उसका विचार था कि अशोक अपनी ऊँचाइयों से कभी नीचे नहीं उतरेगा ।

अशोक जब एक सप्ताह की छुट्टी पर यहाँ आया तो उसे पता चला कि अंजना का विवाह अभी नहीं हुआ है और सगाई भी टूट चुकी है । उसे मन में एक अव्यक्त-सी खुशी हुई और वह एक दिन यह सोचकर कि रंगीलाल जी दफ्तर गये होंगे, अंजना के घर पहुँचा ।

जैसे ही अंजना उसके सामने आई, उसने बढ़कर उसके हाथ भींच लिये । एक क्षण में ही दोनों ने आँखों ही आँखों में अपनी प्रेम कहानी व्यक्त कर दी । अब तक का दिलों में बन्द तूफ़ान फट पड़ा और वे दोनों एक दूसरे में गुंथ गये ।

महीने भर बाद दोनों की शादी हो गई । और कुछ दिन बाद उसका स्थानान्तरण पुनः इसी शहर में हो गया । अब वही अशोक था, वही अंजना, वही सुनीता और वही उसके ‘सर’—रंगीलाल जी ।

ग्यारह

अशोक और अंजना का जीवन प्यार से लबरेज़ था । वह दोनों एक दूसरे से असीम प्यार करते थे । इतना सब कुछ होते हुए भी दोनों के बीच एक अभाव मौजूद था । अंजना बहुत ही भावुक लड़की थी । वह अपनी राय को महत्व देती और सदैव उत्तम समझती थी । उसका पालन-पोषण ही कुछ इस ढंग से हुआ था कि स्वभाव में ज़िद की आदत सम्मिलित हो गई वरना हर दृष्टिकोण से वह एक आदर्श पत्नी थी । भावुक होने के कारण वह यह विचार कि अशोक अब भी नीलू से प्यार करता है, विवाह के उपरान्त भी अपने हृदय से नहीं निकाल सकी । जैसे नीलू को, जो अब भी कदाचित् अशोक के हृदय पर आसीन थी, वहाँ से हटाकर स्वयं आसीन हो जाने का उसका अपना भाव दुर्बल ही नहीं अपितु असम्भव-सा प्रतीत होता था । अतः जब भी वह अशोक को कुछ सोचते देखती तो उसके मस्तिष्क में यही सन्देह पैदा होता कि वह इस समय भी अवश्य नीलू के प्रति कुछ सोच रहा होगा ।

एक दिन यह अनुभूति उस पर अत्युच्च सीमा तक आच्छन्न हो गई तो उसने फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया। अशोक ने दिल में सोचा कि शायद वह अंजना को खुश रखने में सफल नहीं हो सका।

वह हतप्रभ-सा होकर बोला—‘अंजना, कुछ बताओ तो सही, आखिर बात क्या है?’ ‘कुछ नहीं। यों ही एक विचार पैदा हो गया था।’ वह आहिस्ता से वेदनापूर्ण स्वर में बोली।

‘मालूम होता है, मैं तुम्हें खुश रखने में असफल सिद्ध हुआ हूँ। यह मेरा दुर्भाग्य है।’

‘नहीं, इसमें आपका कोई दोष नहीं। मैं यह सोचती हूँ कि मैं नीलू की तरह नहीं बन सकी। यदि ऐसा होता तो आप उसे अवश्य भूल जाते।’.....

‘ऐसी कोई बात नहीं है अंजना। नीलू और अंजना.....अंजना और नीलू.....दोनों अपनी अपनी जगह पर अपना-अपना व्यक्तित्व रखती हैं।’

‘पर मैं नीलू तो नहीं बन सकती।’

‘मैं कब कहता हूँ कि तुम नीलू बन जाओ। तुम्हारे अन्दर जो खूबियाँ हैं, वह मैं जानता हूँ। तुम केवल अंजना बनकर मेरे सामने आती रहो। अब नीलू का प्रसंग ही क्या? वह बेचारी तो कब की ईश्वर को प्यारी हो चुकी और उसकी अच्छाइयाँ और विलक्षणतायें सब चिता के साथ भस्म हो चुकीं.....’ अशोक का स्वर शोकातुर हो चला।

‘पर आप तो नीलू को प्रेम करते हैं?’ अधीर हो अंजना बोली।

‘हां, मैं उससे प्यार करता था—’ अशोक ने गहरा निश्वास छोड़ते हुए कहा—‘उसे नीलू समझ कर ही मैं उसे प्यार करता था। और अब तुम्हें प्यार करता हूँ—अंजना समझ कर। मालूम होता है, तुम्हारे भीतर व्यर्थ का यह सन्देह तुम्हें विचलित करता रहता है। सन्देह के

इस दीमक को तुम बाहर निकाल कर फेंक दो ताकि हम दोनों विश्वास के सुखद वातावरण में स्नेहपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें ।'.....

अंजना हँसने लगी ।

यद्यपि उसकी जिन्दगी एक निर्मल नदी की तरह हल्के-हल्के गीत गाती हुई आगे बढ़ रही थी, पर इस घर में रह रह कर कुछ रुकावट-सी पैदा हो जाती थी । अब भी अंजना यही महसूस करती थी कि अशोक अभी तक नीलू को नहीं भुला सका है । यदि वह अंजना को भी प्यार करता है, तो उसके नेत्रों के सम्मुख नीलू की ही तस्वीर होती है । और यह विचार उसे कचोटता रहता कि वह नीलू नहीं बन सकती ।

अशोक को कभी-कभी लगता कि नीलू की आत्मा इस घर में ही है और वह एक क्षण के लिये भी उससे पृथक् नहीं हुई । वह जानता था कि अब इस जिन्दगी का केवल एक ही सितारा अंजना मात्र है । विवाह से पूर्व उसने अपने दिल में खूब गहराई के साथ सोचा था—नीरव सूनी घड़ियों में उसने खूब चिन्तन किया था कि कहीं वह नीलू से जीवन भर जो वादे किये थे, उनसे विमुख तो नहीं हो रहा ? उनकी पूरी तरह रक्षा तो कर रहा है ?.....कदाचित् हाँ ।....वह उसका था और वह उसकी थी । पर जब वह उनके मध्य रही ही नहीं, फिर कौड़ी-पाई का हिसाब कैसा ? उसके पुराने खाते में न कुछ देना शेष था और न लेना । उसने अब एक नई बही खोल ली थी । नये हिसाब थे, नई सतरें, नये माप-दण्ड । अब वह और अंजना साथ-साथ चल रहे थे ।

अंजना अभी उस सन्देह के व्यूह से नहीं निकली थी, जिसमें वह शादी के तुरन्त बाद ही फँस गई थी । जब अशोक उससे कोई प्यार की बात कहता तो वह कह उठती—‘क्या आप नीलू से भी यही कहा करते थे ? क्या आप नीलू से भी इतना ही प्यार करते थे ? क्या नीलू को भी आप इतनी ही प्रिय, इतनी ही घनिष्ठ समझते थे ?.....’

अतीत को स्पर्श करने से हर व्यक्ति को दुःख होता है । अशोक को

भी इन बातों से दुःख होता। एक दिन आखिर वह चिढ़ गया और नाराज़गी में बोला—‘हाँ-हाँ, मैं उससे प्यार करता था। उससे भी यही बातें किया करता था—क्योंकि वह मेरी पत्नी थी। अब वह इस संसार में नहीं रही। पर क्या तुम उसकी यादें मेरे हृदय से छीन लेना चाहती हो? यह हरगिज़ नहीं हो सकता। अब तुम मेरी पत्नी हो। अब मैं तुमसे भी उसी तरह प्रेम करता हूँ जैसे नीलू से किया करता था। ईश्वर के लिये अपने इन अशोभनीय और तुच्छ विचारों से अपनी जिन्दगी की खूबियों और अच्छाइयों को नष्ट करने की कोशिश न करो—इसी में मेरा और तुम्हारा दोनों का हित निहित है।’ यह कह, अशोक जल्दी से बाहर निकल गया।

आज पहली बार अशोक ने अपना रोप प्रकट किया था। थोड़ी देर बाद अंजना ने सारी पृष्ठभूमि पर संचित मन से दृष्टि डाली। वास्तव में मेरा दोष है, मैं गलती पर हूँ। मुझे इस प्रकार व्यर्थ की बातों से काम नहीं लेना चाहिये। कोई भी पुरुष हो, ऐसी बातों से तो बर्य का दामन छोड़ देगा। अशोक का कहना बिल्कुल ठीक है।.....

उसने धीरे-धीरे अपने आपको ठीक साँचों में ढाल लेने का यत्न किया। उसने गम्भीरता से सोचा कि यदि उसे ठीक ढंग से जीवन व्यतीत करना है तो ऐसी निर्मूल और निरर्थक बातों से किनारा करना होगा। वह बुद्धिमान लड़की थी—कुछ ही दिनों में वह ठीक निश्चय पर पहुँच गई। और अब वह एक निर्मल नदी की भाँति बिना किसी अवरोध के, निःशंक होकर बहने लगी।

अंजना के एक बच्ची पैदा हुई। बच्ची के नाना और पिता सोचते रहे कि बच्ची का क्या नाम रखा जाय। दोनों किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके तो अंजना ने यह समस्या इस प्रकार हल करदी—‘मैंने फैसला कर लिया है कि बच्ची का नाम नीलू रखा जाय। ईश्वर करे, बड़ी होकर वह बिल्कुल नीलू की तरह निकले।’

यह फैसला स्वीकार कर लिया गया और बड़े लाड़-प्यार से बच्ची का लालन पालन-होने लगा।

अचानक ज़िन्दगी ने पलटा खाया और वह घटना हो गई जिसकी कल्पना तक किसी ने नहीं की होगी कि अंजना की चमकती हुई चांदनी को अंधेरों ने निगल लिया। उसे डाक्टर धीरेन्द्र का पत्र मिला। डाकिया आया और उसने घंटी बजाई और दरवाजे के नीचे दो पत्र फैंककर चला गया। इन दिनों अशोक दौरे पर गया हुआ था। एक तो उसका पत्र आया था। अंजना ने उसे जल्दी से खोला और पढ़ा। दूसरे पत्र की लिखावट बिल्कुल अजनबी थी। उसे धीरे-धीरे खोला। उसने पत्र पढ़ना शुरू किया। उसके चेहरे से खून बिलकुल निचुड़ गया। पाँच तले ज़मीन अनृभव ही नहीं हो रही थी। उसकी आँखों के सम्मुख अंधकार मूर्त्त हो उठा। उसने अपना सिर थाम लिया। वह कुछ संभली और पत्र को दूसरी बार पढ़ना शुरू किया। उसने सोचा, कदाचित उसने पढ़ने में गलती की है।

सुनीता सामने बैठी थी। वह अंजना के चेहरे का उतार-चढ़ाव देख रही थी। उसने सरल भाषा से पूछा—‘माँ’ आप इस तरह परेशान क्यों होगई? क्या बात है?’

अंजना ने सुनीता की तरफ इस तरह देखा, जैसे कोई छलांगें भरती हुई हिरणी अचानक तीर खाकर शिकारी की तरफ देखती है।

उसने केवल इतना ही कहा—‘कोई ऐसी बात नहीं वेटी—’
पत्र में लिखा था—

प्रिय महोदय,

नमस्कार। मैं बड़ी जल्दी में यह पत्र लिख रहा हूँ। इसलिये मुझे आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे कि मैं बिना कोई भूमिका बांधे मतलब की बात लिख रहा हूँ। करीब ढाई साल हुये हमारे गांव के पास ही आपकी पत्नी नीलू ज़ख्मी हालत में पाई गई थी। चोट ऐसी थी कि उसकी स्मरण शक्ति बिलकुल खो गई थी। मैं धीरे-धीरे उसका इलाज करता रहा। आज उसकी यादें पुनः लौट आई हैं और उसने अपना नाम, रेल दुर्घटना और आपका पता इत्यादि मुझे सब कुछ

बताया। अब मैं यह थोड़े से शब्द लिख रहा हूँ ताकि आप जिन दुःखों में हैं, वे शीघ्र समाप्त हो जाएँ और आपके सम्मुख अंधेरों के गिरे पर्शों के भीतर पुनः एक नई रोशनी, एक नया आलोक फैल जाए। नीलू और राहुल दोनों कुशल हैं। आपका पत्र मिलते ही नीलू आपसे मिलने की योजना बना रही है। हमने बड़ी मुश्किल से उसे हमारे पास रोक रखा है।

आपका—

डाक्टर धीरेन्द्र

पत्र में ऊपर की ओर डाक्टर का पता था। वह गांव महाराष्ट्र के काले उपजाऊ क्षेत्र में स्थित था। अंजना को यों महसूस हो रहा था जैसे उसके सम्पूर्ण शरीर में खून जमकर रह गया है। उसका कदम नहीं उठ सकता था। सारी सृष्टि घूमती हुई नज़र आ रही थी वह जानशून्य-सी अवस्था में चेतना-वेदना विहीन बैठी रही।

उसने फिर जल्दी से पत्र को मेज़ की दराज़ में बन्द कर दिया और निर्जीव पुतली की तरह इधर-उधर घूमती रही। उसके मस्तिष्क में केवल एक ही बात घूम रही थी—‘नीलू जीवित है।’

उसने जल्दी से दोनों बच्चों को विस्तर पर सुला दिया और फिर स्वयं मेज़ के पास आकर बैठ गई। दराज़ खोली और फिर पत्र पढ़ना शुरू किया। क्या संसार में ऐसा भी होता है? मेरा घरोंदा कब से विद्युत्-प्रकाश में था। मेरा बना-बनाया घरोंदा घड़ाम से नीचे आ गिरा। निर्मल नदी धीरे-धीरे गीत गाती हुई बह रही थी कि भारी-भर कम पहाड़ अचानक लुढ़कता हुआ आया और उसने नदी के सारे गीत कुचल कर रख दिये। —

बारह

उसने सोचा कि वह एक पल भी अशोक के बिना नहीं रह सकेगी । आज उसे महसूस हो रहा था कि उसे अशोक से कितना प्यार है । लेकिन नीलू जीवित है और जैसे ही यह बात उसे पता लगेगी तो उसके दिल में नीलू का प्यार तीव्रता के साथ जाग जायेगा । वह उस समय अपना मुँह किवर छिपायेगी ? कहाँ जाएगी वह ? उस भंवर में फँसने के उपरान्त उसकी जीवन-नौका का क्या होगा आखिर ?

अंजना ने पागलों की तरह ऊँचे स्वर में कहा—‘नहीं, ऐसा कदापि नहीं होगा—’ उसके सिर में कोई हथोड़े मार रहा था । वह सिर को पकड़े न जाने उस दशा में कब तक बैठी रही । कुछ देर बाद उसने सोचा—नीलू मर चुकी है । यदि वह जीवित है तो भी मर चुकी है । उसे कोई भी अधिकार नहीं है कि वह मेरे घर के क्रहकहों को नोंचकर रुदननाद में परिवर्तित कर दे । अशोक को भी विश्वास है कि वह मर

चुकी है। यद्यपि उसने लाश की सूरत नहीं देखी थी, पर वह जानता है कि नीलू की चिता जलाई जा चुकी है। यह डाक्टर घीरेन्द्र कौन दुष्ट इन्सान है? उसने उसका इलाज क्यों किया? उसकी यादों को पुनर्जीवित क्यों किया? नीलू उस ट्रेन दुर्घटना में मर ही क्यों न गई? पर वह तो मर ही चुकी है। अब वह मेरी खुशियों को पांव तले नहीं रोंद सकती। यदि वह जीवित है तो भी मैं उसे अशोक से मिलने नहीं दूंगी।

उसका हृदय धक-धक कर रहा था, उसकी आँखें जल रही थीं। फिर वह सोचने लगी—हो सकता है कि किसी दुश्मन ने यह झूठा पत्र भिजवाया है ताकि मेरी खुशियां नष्ट की जा सकें और मेरी जमी-जमाई गृहस्थी में आग लग जाए। मैं भी इसका जवाब इसी तरह दूंगी।

सुबह होते ही उसने पत्र का जवाब डाक्टर घीरेन्द्र को भिजवा दिया कि अशोक हृदय-गति के बन्द हो जाने से अकसमात् चल बसे....।

और इसके बाद अंजना का यह नित्यक्रम हो गया कि वह डाकिया के आने का टाइम होने के समय बाहर दरवाजे पर मौजूद रहती ताकि कोई और पत्र आये तो किसी और के हाथ न लगे।

तीसरे दिन अशोक दौरे पर से वापस लौटा। उसे पाँच-सात दिन से अंजना का कोई पत्र नहीं मिला था। घर पहुँचते ही उसने तुरन्त पूछा—‘क्या बात है, इन दिनों तुमने कोई पत्र नहीं लिखा मुझे? क्या तबियत खराब रही?’ यह कह, उसने अंजना को देखा।

अंजना की आँखों में उदासी छाई हुई थी। रंग पीला पड़ गया था और आँखों में आंसू चमक रहे थे और उसके होठों की मुस्कानें किसी ने नोंच ली थी।

‘अंजना, तुम्हें क्या हो गया है?’

‘फिर तुम्हारी यह हालत क्यों हो गई है?’

अंजना दौड़कर अशोक से लिपट गई और घीरे-घीरे यही कहती रही—‘अशोक, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ—बेहद प्यार।’

‘प्यार तो तुम करती हो पर तुम रो क्यों रही हो ?’

‘आपके बिना मैं जीवित नहीं रह सकूंगी ।’

वह अशोक से लिपटी रही ।

अशोक ऐसी अप्रत्याशित बातों और आचरण को एकाएक नहीं समझ सका । उसने सोचा, उसके थोड़े से दिनों के लिये बाहर चले जाने की ही यह प्रतिक्रिया है । अतः स्नेह में भर कर बोला—‘अच्छा तो तुम्हारा मन मेरे पीछे से नहीं लगा ? मैं कोई दस महीने बाद लौटकर नहीं आया हूँ पगली, कुल आठ-दस दिन ही तो हुए हैं । इसमें यह हाल ? उसने अंजना को अपने वक्ष से लगाते हुए कहा ।

अंजना उसके सीने में मुंह रखे बोली—‘यह दस दिन मुझे दस वर्ष मालूम हो रहे थे ।’ अशोक सहज हंसी हंसता रहा ।.....

दो महीने बीत गये । कोई पत्र नहीं आया । अंजना मन में सोचने लगी—ऐसा मालूम होता है कि जो पत्र मैंने भेजा था, प्रभावकारी सिद्ध हुआ है । नीलू अपने भाग्य के सहारे कहीं और चल दी होगी । सम्भव है, इस आघात से वह मर भी गई हो.....

फिर किसी न दिखने वाली नीलू से उसने कहा—‘नीलू, ईश्वर के लिये मेरा घर बर्बाद न करना । तुम्हारी बड़ी दया और कृपा होगी । यदि तुम कहीं और चली जाओ तो मैं तुम्हारे इस उपकार को कभी न भूलूंगी ।’

वह इन्हीं विचारों में डूबी रहती ।

एक दिन उसने अशोक से फिर अपने पुराने लहजे में पूछा—‘आप मुझसे ज्यादा प्रेम करते हैं या नीलू से ?’

‘तुमने फिर वही किस्सा छेड़ दिया ?’

‘नहीं विश्वास कीजिये । कोई वैसी बात नहीं । मैं तो यों ही पूछ रही हूँ ।’ उसने दबे स्वर में कहा ।

‘मैंने कितनी बार तो तुम्हें बताया है कि जब नीलू इस दुनिया में थी तो मैं उसे असीम प्रेम करता था । अब वह इस दुनिया में नहीं है,

तो तुम्हें प्यार करता हूँ ।.....पागल कहीं की.....' यह कह, अशोक मुस्कराता हुआ वहाँ से उठकर दूसरे कमरे में चल दिया ।

और अंजना दिल में सोचने लगी—अशोक के प्यार की बात नीलू की ज़िन्दगी और मौत से सम्बन्धित है और वही नीलू अभी जीवित है । यदि वह किसी दिन आगई तो ?

.....वह आपाद मस्तक कांप उठी । नीलू को एक इतने बड़े असत्य से सूचित करने का विचार उसे सोते-बैठते कचोटता रहता था । इस विश्वासघात का उदय यदि किसी दिन हुआ और अशोक और नीलू को पता चला तो वह संसार के किस कोने में मुँह छिपा पायेगी ?..... वह पसीने से नहा उठी ।

X

X

X

X

दूसरे दिन सहसा बाहर की घंटी बजी । नौकर ने दरवाजा खोला । और दरवाजा खुलते ही उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं । उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ । वह यह क्या देख रहा है ?

अशोक सामने खाने की मेज पर बैठा था । वह दरवाजा खुलने की प्रतीक्षा में था कि इतनी सुबह-सवेरे कौन आ सकता है ?.....अंजना रसोई घर में थी ।

जैसे ही नीलू ने भीतर प्रवेश किया, अशोक के मुँह से हल्की दबी-सी चीख निकली—'नीलू !' और वह होठों ही होठों में फुसफुसाई—'अशोक ! अशोक जीवित है ?.....'

वह सोचने लगा कि वह कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा ? नीलू मरकर ज़िन्दा हो गई ? वह विजली की तरह तड़प कर उठा और भाग कर उसने नीलू और राहुल को अपने बाहुपाश में जकड़ कर भर लिया । वह पागलों की तरह बार-बार राहुल को चूमने लगा । वह ज्ञानशून्य-सा कभी अपने बेटे को और कभी अपनी पत्नी नीलू को देखता था । राहुल एक अजनबी पुरुष को देखकर अपनी माँ से लिपटा जा रहा था, अशोक उसे खींचकर अपने पास लेना चाह रहा था, पर वह माँ को छोड़ना नहीं चाहता था ।

नीलू ने जैसे ही सुनीता को देखा तो वह चीखकर बोली—'मेरी बेटी सुनीता।' सुनीता केवल विस्फारित नेत्रों से इस नव आगन्तुका को देख रही थी। नीलू फिर दौड़ कर सुनीता के पास गई, राहुल को एक कुर्सी पर बिठाया और सुनीता से लिपट गई—मेरी बच्ची, मेरी बेटी—' वह उसे बार-बार चूमती ही रही।

इसके बाद नीलू उठी और अशोक की ओर बढ़ी। उसकी आँखों में अनगिनत खुशियों के आँसू चमक रहे थे। अशोक ने उसे अपने सीने में भर लिया परन्तु उसका कसा हुआ बाहुपाश सहसा ढीला पड़ गया। नीलू ने अनुभव किया कि यह बाहुपाश अजनबी-सा क्यों है? उसने उसके वक्ष पर से मुँह उठाकर उसकी ओर देखा—अशोक दाँतों से अपने होठ काट रहा था। वह किसी बड़ी परेशानी में घिरा हुआ मालूम हो रहा था।

सहसा अंजना रसोई घर से बाहर आई और उसने यह दृश्य देखा। उसके सीने में चलते-चलते दिल रुक गया। वह लड़खड़ाती-सी सामने के एक कमरे में चली गई।

नीलू ने यह सब देखा और उसका मुँह रक्त-विहीन हो गया। उसे लगा जैसे वह अभी-अभी मूर्छित होकर गिर पड़ेगी। वह वहीं लड़ से पास की एक कुर्सी पर बैठ गई।

अंजना के आँखों से ओझल होने के पश्चात् कमरे का वातावरण शान्त हो गया। नीलू ने नीरव बने सोचा कि एक असाधारण-सी बेचैनी और संघर्ष इस घर में मौजूद है।

'नीलू, मैं कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा?' अशोक ने नीरवता भंग की।

'नहीं, मैं स्वयं तो मौजूद हूँ।' संक्षिप्त, बुझी-सी मुस्कान में नीलू बोली।

अशोक ने भावातिरेक में प्रश्नों की बौछार-सी कर दी—'तुम इतने

समय तक कहाँ रहें ? तुम्हारी जान कैसे बची ? सुनीता का क्या हुआ ? तुम्हारे साथ और कौन था ? तुमने मुझे पत्र क्यों नहीं लिखा ? तुम अब तक चुप कैसे रह पाई ? क्या तुम्हें मेरी और सुनीता की इतने दिनों तक कोई याद ही न आई ?'.....

नीलू ने आँखें बन्द की और फिर खोल दी—‘प्रिय, यह कहानी बहुत लम्बी है ।’ अशोक हर्ष में पागल होकर बोला—‘भगवान की कृपा है—कितनी बड़ी कृपा कि तुम बच गई । और अब मेरे सामने बैठी हो । मुझे और क्या चाहिये ?’.....यह कह, वह धपक रुका और फिर बोला—‘मुझे पूरी लम्बी कहानी नहीं तो संक्षेप में ही सुनाओ । मेरा मन सुनने को अत्यन्त अवीर है नीलू ।

‘मैं आपको पूरी कहानी सुनाऊंगी, विश्वास कीजिये । पहले आप मुझे बतायें कि आपको रेल दुर्घटना को खबर कैसे और कब मिली ?’

‘दूसरे दिन सुबह रेडियो पर, खबरों में । उफ़, कुछ न पूछो नीलू—उस खबर से मेरे दिल पर क्या बीती । मैं किस तरह घटना-स्थल पर पहुँचा, मेरी क्या दशा थी और कैसा हृदय विदारक दृश्य था । अब भी याद करता हूँ तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।’

‘तो पहले आप मुझे अपनी कहानी सुनना । मैं सुनने को बेहद उत्सुक हो रही हूँ ।’

‘नहीं नीलू, पहले मैं तुम्हारे मुँह से सुनने को वेताब हूँ । पहले तुम सुनाओगी ।’ अशोक ने ज़िद करते हुए कहा—‘इसके बाद मैं । मेरा नम्बर है ।’

‘अच्छी बात है । पहले मैं ही सुना देती हूँ.....!’ संक्षिप्त-मुस्कान में नीलू ने कहा । उसका मन हुआ कि पहले वह अशोक से उस चिट्ठी के बारे में पूछे जिसमें उसकी मौत की सूचना उसे प्राप्त हुई थी पर उसने पूछने का विचार अभी कुछ देर के लिये बदल दिया । उसने सोचा, थोड़ी देर बाद बातों ही बातों में सब पता चल जायेगा कि वास्तविकता क्या थी ।

‘अशोक ने इतने में नौकर को बुलाया और गुसलखाने में गर्म पानी, तौलिया, साबुन आदि रखने को और वाद में सुवह का नाश्ता तैयार करने को जरूरी आदेश दिये और फिर नीलू को दूसरे कमरे में ले गया ।



तेरह

नहा धोकर और नाश्ता कर चुकने के बाद नीलू और अशोक एक दूसरे के समीप बैठ गये । कहानी कहना शुरू होने को था कि सहसा कुछ याद आया । वह उठा और उसने टेलीफोन पर दफ्तर नहीं आने की सूचना दे दी और उस रोज़ की छुट्टी मांग ली । इसके बाद वह पुनः आकर नीलू के पास बैठ गया ।

नीलू अपनी सारी कथा सुनाने लगी ।

वह जड़वत् बना एकाग्र, एकनिष्ठ भाव से सुनने लगा ।

कहानी चलती रही ।.....

अशोक कुछ और विचारों का मनुष्य था । वह जानता था कि नीलू के आजाने से उसके जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा होने वाली है और वह एक बड़े भारी संघर्ष में से होकर गुज़रेगा । पर उसने इस बात को अपने मस्तिष्क के गुप्तखाने में दबा लिया । परिस्थिति के मुकाबले

के लिये यह जरूरी नहीं कि जब कोई परीक्षा सामने आए तो उस समय इनसान निराश होकर हिम्मत छोड़ दे। ऐसा दृष्टिकोण था अशोक का। इस समय तो वह इसी बात पर हर्ष प्रकट करना चाहता था कि नीलू और राहुल दोनों जीवित थे। वह इसी बात में मग्न था। कल क्या होगा? इसका क्या परिणाम होगा? वह अभी इन समस्त संभावनाओं से अनभिज्ञ रहना चाहता था। इन बातों का वह समय आने पर ही निर्णय करेगा। आने वाले दिन का सम्भाव्य दुःख वह आज ही क्यों उठाये?

वह कहानी के एक-एक शब्द को बड़े ध्यान से सुन रहा था।

कहानी रेल दुर्घटना के स्थल से गुजर रही थी। जैसे ही नीलू ने उसके सम्मुख एक भारी भरकम तख्ते के नीचे दबकर पिचक जाने का वर्णन किया और अपनी विवशता का चित्र खींचा तो अशोक के मुँह से एक छुटी हुई चीख बाहर निकली और आंखों के आगे धुंध की परतें सी फैल गई।.....

अंजना अपने कमरे में बन्द, एक पलंग पर पड़ी-पड़ी शुरू से लेकर आज तक की घटनाओं को याद कर रही थी। पता नहीं वह इस दशा में कब से पड़ी २ सोच रही थी। वह सोच रही थी कि अब उसका क्या परिणाम होगा? क्या अब उसकी समस्त अभिलाषाएं खून से लथपथ हो जायेंगी? क्या उसकी जीवन नौका अब इस भंवर से कभी नहीं निकल सकेगी?

वह जानती थी कि इस समय नीलू अपनी दुःख भरी कहानी अशोक को सुना रही होगी। अशोक की आंखें आंसुओं से भरी होंगी और वह बार-बार अपने बच्चे राहुल को अपने से लिपटा कर चूम रहा होगा। उसे इन बातों से क्या? उसने द्वार पर पड़े पर्दों को खींच दिये और ताले का छोटा-सा छिद्र बन्द कर दिया। उस तक उनकी आवाज क्यों आए?

वह अब एक ऐसे स्थल पर आ पहुँची थी जहाँ उसके लिये अब शेष कुछ न रहा था। उसकी आंखों के आंसू भी सूख चुके थे। उसकी

समस्त भावनायें उपेक्षित-सी जैसे उस एक कमरे में सिमट कर रह गई थीं। अब न दुःख रहा, न क्रोध किसी पर। न आशा रही और न निराशा। वह तो अब एक निष्प्राण-सी लाश थी, जिसकी रह उसके ऊपर मंडरा रही थी।

सहसा उसके निर्जीव शरीर में थरथरी-सी महसूस हुई। आँखें खोलीं। उसकी भावनाओं ने करवट बदली। जो कुछ होगा, उसे स्वीकृत होगा, मान्य होगा। अशोक का निर्णय, नीलू का निर्णय—सब उसे शिरोधार्य होगा। वह मुंह से कुछ नहीं बोलेगी, किसी प्रकार का कोई प्रतिकार न करेगी। दुखान्त घटनाएं अवश्य उसके सम्मुख आने वाली हैं पर अभी से वह क्यों लाश बनकर चारपाई पर पड़ी रहे? इसी समय तो उसे कोई घर से बाहर निकालकर नहीं फेंक देगा? सुनीता को स्कूल के लिये तैयार करना है। छोटी नीलू कब से आया के पास है। उसने उसे आज दूध तक नहीं पिलाया?

उसने धीरे से दरवाजा खोला और वाथरूम की ओर बढ़ी और साथ ही आवाज दी—‘चलो बेटी सुनीता। हाथ-मुंह धो लो। स्कूल का टाइम होने आया।

इसके बाद वह रसोई घर की ओर बढ़ गई और सुनीता के लिये लंच-वाक्स में कुछ खाने की चीजें भरने लगी।.....

कहानी स्मरण-शक्ति के पुनः प्रथम बार लौट आने के चरण से गुजर रही थी, जब नीलू ने पहली बार डाक्टर धीरेन्द्र को अपना नाम बताया था और डाक्टर और उनकी धर्मपत्नी मनोरमा देवी के हर्ष का पार नहीं रहा था।.....

इस स्थल पर आकर अशोक की आँखों में मानो स्वर्ग हँस पड़ा।

वह बड़ी एकाग्रता से सुनता रहा।

दोपहर हो गई। एशन्ट्रे में सिगरेटों और तूलियों का अम्बर-सा लग गया। आखिर नीलू कहानी के अन्तिम चरण में पहुँच गई। उसने जानबूझ कर उस मृत्यु की सूचना लाने वाले पत्र का अशोक से उल्लेख

नहीं किया यथा समय के लिये उसने वह बात अपने दिल के अन्दर दबा कर रख ली। उसने सोचा किसी उपयुक्त अवसर पर ही वह इस बात का उल्लेख करेगी और यदि इस बीच अशोक ने खुद ही इस बात का पर्दा उठा दिया तो सबसे ही अच्छा, अपने आप वास्तविकता का पता चल जायेगा।

कहानी समाप्त होने पर अशोक ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और फिर प्रेमावेश में आकर नीलू से लिपट गया। उसकी आत्मा हर्ष विभोर हो रही थी और वह मन ही मन भगवान की दया और कृपा के सम्मुख नत मस्तक हो रहा था। साथ ही वह हृदय से डाक्टर और उनकी धर्मपत्नी मनोरमा देवी और साथ ही हरिया की माँ के योगदान के प्रति मन ही मन आभार प्रदर्शन कर रहा था। इन्हीं सब के कारण आज वह अपनी नीलू और बेटे राहुल को पा सका था। आज उसकी खुशी का ठिकाना न था।

इसके बाद उसने नौकर को आवाज़ लगाई और थोड़ी देर में नौकर कमरे में भेज पर उन दोनों का खाना रख गया।.....

खाना खा चुकने के उपरांत नीलू ने अशोक से उसकी अपनी कहानी सुनाने के लिये जिद की।

अशोक ने उसकी बात स्वीकार करते हुए, अपनी सवा-साल की कथा का एक-एक अक्षर नीलू को सुनाना आरम्भ किया।

वह एकाग्र, एकस्थ भाव से सुनती रही, सुनती रही। कहानी चलती रही और वह सुनती रही।

दिन ढलने आ गया। सुनीता स्कूल से घर लौट आई। नौकर इस बीच दो बार एण-ट्रे को साफ़ कर गया और दोपहर की चाय पिला गया।

एक एक शब्द अशोक के दिल से निकल रहा था और वह प्रस्तर प्रतिमा-सी बैठी उसकी बात सुनती रही।.....और कहानी पूर्ण हो गई आखिर—वह दीर्घ उच्छ्वास-पूर्ण और हृदय विदारक कहानी।

नीलू अत्यन्त शोकपूर्ण तथा दुःख के रास्ते से गुज़र कर आई थी। आज उसे एक और प्राण-घातक अघात से दो बार हॉना पड़ा। जीवन का रख ही जैसे बदल गया। भाग्य ने इस इतने से काल में ही उसे कितने उलट-फेर दिखा दिये, इसकी उसने कभी स्वप्न में भी कल्पना न की थी। उसने यह तो कभी विचारा भी न था कि अशोक दूसरा विवाह कर लेगा। यही हाल अशोक का था। उसने स्वप्न में भी कभी कल्पना न की थी कि नीलू अब जीवित होगी और जीवित लौट आयेगी। भाग्य की कैसी विचित्र विडम्बना थी कि कुछ समय पूर्व अशोक नीलू को मरी हुई समझ रहा था और नीलू उस पत्र की प्राप्ति के बाद अशोक को मृतक समझ रही थी पर इस समय दोनों एक दूसरे के सम्मुख जीवित बैठे थे। पर जीवन की धारा कितनी बदल चुकी थी और एक समय के पति-पत्नी होते हुए भी वे दोनों आज अपने बीच कितना बड़ा अभाव-सा महसूस कर रहे थे। एक अंजना मात्र ने, उसकी उस घर में उपस्थिति मात्र की अनुभूति ने उन्हें एक गहरे अभाव से जकड़ कर घेर लिया था। और वह छटपटाये से, विवश और लाचार से रिक्त और शून्य-उदास नेत्रों से एक दूसरे को देख रहे थे।

एक ही बात रह रह कर नीलू के मस्तिष्क में उभर रही थी—वह यह कि अशोक ने अपनी अन्तर्वेदना की इस सम्पूर्ण कहानी में उस पत्र का कोई उल्लेख नहीं किया था जो डाक्टर ने उसे भेजा था और उस पत्र का भी उल्लेख नहीं किया था जिसमें इधर से उसकी अपनी मृत्यु की सूचना डाक्टर साहब को दी गई थी। यही एक बात उसके हृदय में हूल-हूल कर उठ रही थी और उसे क्षत-विक्षत कर रही थी। वह हतप्रभ-सी बैठी थी।

नीलू से आखिर नहीं रहा गया। उसने मर्म की बात को गोपनीय ही रखते हुए मन की जिज्ञासा को नया आवरण उठाते हुए कहा—‘आप को डाक्टर धीरेन्द्र का मेरी ओर से भेजा हुआ कोई पत्र नहीं मिला?’

‘नहीं तो। क्या डाक्टर ने मुझे कोई पत्र लिखा था?’ उत्सुक हो,

अशोक ने पूछा। 'हाँ, संक्षेप में मेरी सूचना उन्होंने आप को उस पत्र में दी थी। मेरे चलने से पूर्व उन्होंने वह पत्र डाला था।' नीलू हैरान हो रही थी।

'अच्छा?' आश्चर्य चकित हो, अशोक ने कहा—'पर तुमने तो अपनी सम्पूर्ण कहानी में मुझे किसी पत्र का उल्लेख नहीं किया।'

अशोक के इस तर्क से अप्रतिभ होकर नीलू केवल इतना ही बोली—'आवेश में शायद मुझे ध्यान नहीं रहा—! पर वास्तविकता यह है कि डाक्टर साहब ने पत्र डाला था—! वह यहां तक कहने को उद्यत हो गई थी कि इधर से भी पत्र का उत्तर भेजा गया है, जो डाक्टर साहब को मिला था और जिसमें हृदय गति रुक जाने के कारण अशोक की अचानक मृत्यु की खबर भेजी गई थी। पर उसने कुछ नहीं कहा। वह मौन रह गई। किसी उपयुक्त अवसर के लिये उसने यह प्रश्न छोट कर मन के भीतर सुरक्षित रख लिया।

उसके विचार दो धाराओं में विभाजित हो रहे थे। एक: अशोक को वास्तव में पत्र नहीं मिला है। यह झूठ क्यों कहने लगे? झूठ से इन्हें क्या लाभ होगा? मन के जितने भी आलोड़न थे, उनका भी तो कैसा वास्तविक और सही सही निरपेक्ष शब्दों में इन्होंने अपनी कहानी में वर्णन कर दिया है। कहाँ कुछ मुझसे छिपाया? कौनसा दुराव किया मुझसे? एक-एक बात और अपनी एक-एक दुर्बलता और मजबूरी और परिस्थिति की विवशता, जिसके कारण इन्हें अंजना से विवाह करना पड़ा—इन्होंने स्पष्ट रूप से कहानी में स्वीकारा तो हैं। कहाँ कुछ छल किया है मुझसे?

दो: इन्हें वह पत्र क्यों नहीं मिला होगा? जान-बूझ कर अब यह उड़ रहे हैं। जब चोरी पकड़ ली गई है तो यह इस तरह कैफियत देने की कोशिश कर रहे हैं। कैसे छलिया हैं? अब तक मुझे छल रहे हैं? माना कि पत्र की वह लिखावट इनकी नहीं थी, पर पत्र किसी से भी लिखवाया तो जा सकता है? लिखवा लिया होगा किसी से। मैं तो

इनकी तरफ से मर चुकी थी। और इस बीच ही, अल्प काल में ही इन्होंने नई गृहस्थी जमा ली थी उसके सामने मेरे जीवित होने की खबर गौण और तुच्छ नहीं थी तो क्या ? मैं तो इनके हृदय का बोझ थी। नई नवेली बहू के सामने मेरा क्या मूल्य था ? पीछा छुड़ाने का और उपाय न सूझा तो यह सबसे अच्छी तरकीब निकाली। सोचा होगा, यह शोक समाचार सुनकर रो-थक कर बैठ जाऊंगी वहीं और इधर आने का नाम तक न लूंगी। उफ़, कैसा स्वार्थी और लोभी होता है पुरुष। अभी उसे लोभी भंवरे से उपमा दी जाती है।.....

‘क्या सोचने लगी ? विश्वास करो मुझे डाक्टर साहब का कोई पत्र नहीं मिला। अशोक ने पुनः बात को दोहराते हुए कहा।

‘और मेरा भी विश्वास कीजिये, डाक्टर साहब ने इसी पते पर, आपको ही पत्र डाला था।’ नीलू ने दृढता के साथ जवाब दिया।

‘कहो तो मैं अंजना से पूछ देखूँ ?’ अशोक ने कहा—‘हो सकता है कभी मैं बाहर दौरे पर गया हुआ होऊँ और पीछे से पत्र आया हो।’

‘नहीं-नहीं। पूछने की अभी ऐसी जल्दी नहीं है। फिर देखा जायेगा।’ नीलू ने बात को टालने के अभिप्राय से कहा।

दूसरे ही क्षण एक विचार—तेज शराब की तरह उसके दिमाग पर जाकर लगा—वह पत्र कहीं अंजना ने ही तो नहीं लिखा ?

वह निरन्तर आघातों से अत्युक्त सीमा तक भीतर ही भीतर टूट चुकी थी। इतने में अशोक ने अंजना को आवाज दी—‘अंजना, इधर आओ न। सुबह से शाम हो गई और तुम अब तक छिपी हुई हो।’

वह घायल की-सी अवस्था में आई और उदास-सी एक कुर्सी पर बैठ गई। नीलू ने ध्यान से अंजना को देखा। उसकी दृष्टि में जिज्ञासा भी थी और घृणा भी। वह यह सोच रही थी कि यही वह स्त्री है, जिसने उसकी जगह ली है और उसकी हर चीज़ पर अधिकार कर लिया है।

तीनों मौन बैठे थे। तीनों के बीच एक रहस्यमय खामोशी छाई हुई थी। तीनों के बीच अजनबी लोगों का वातावरण फैला हुआ था। तीनों बड़ी वेढव-सी परिस्थिति में घिरे हुए थे। तीनों यह जानते थे कि उनका भविष्य असीम संकट में है, उनकी जीवन-नौकाएं मंवर में घिर गई हैं और उनके पास पतवार नहीं है पर इस समय इन तीनों ने अपने संकटमय भविष्य को कल के आगामी निर्णय पर स्थगित कर दिया था। तीनों के हृदय दुःखों से परिपूर्ण थे, वेदना और अनिश्चितता से प्लावित थे। तीनों चुप स्तब्ध बैठे थे। तीनों को विचित्र परिस्थितियों ने एक जगह लाकर एकत्र कर दिया था। तीनों की जिन्दगियां नाग्य की उलझन में फंस गई थीं। मूक वेदनाओं और प्रलापों के अतिरिक्त उन्हें कुछ नज़र न आता था।.....

तीनों जानते थे कि उनकी इस कहानी में एक डोरी ज़रूर कटेगी, परन्तु वह डोरी किसकी होगी। अभी इस बात का किसी को भी ज्ञान नहीं था। उनमें से प्रत्येक अपनी-अपनी डोरी कटने की सम्भावनाओं से ग्रस्त था।

अशोक नहीं समझ पा रहा था कि वह क्या बात करे। उसने आवाज़ देकर तो अंजना को बुला लिया था पर अब एक विचित्र-सी उलझन में फंस गया था। उसके दिमाग में अगणित बातें चक्कर काट रही थी पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि सबसे पहले शुरुआत किस बात से करे। वह उंगलियों से मेज़ को वेढंगे अंदाज़ से बजा रहा था या फिर निरर्थक भाव से एश-ट्रे में पड़ी अघजली सिगरेट को उठाकर होठों के बीच दाब लेता था और थोड़ी देर बाद ही पुनः वहीं रख देता था।

अंजना ने सोचा—इन दोनों को एकान्त की ज़रूरत है। अभी इन्हें बहुत-सी बातें करनी होंगी। इतने लम्बे समय के बाद दोनों मिले हैं। और नीलू-अशोक के पारस्परिक दुःखों की कथा भी अभी समाप्त नहीं हुई होगी।

वह अपनी कुर्सी से उठती हुई दूसरी ओर मुँह करके दबे स्वर में

बोली—‘आप ज़रा नौकर को कह दें, वह मुझे ‘पापा’ के यहाँ छोड़ आए।’

अशोक ने आश्चर्य से अंजना की ओर देखा। वह कुछ कहने ही जा रहा था कि नीलू के कारण चुप रह गया। विवशता से उसने ‘हां’ में केवल धीरे-धीरे अपना सिर हिला दिया। थोड़ी देर बाद वह वहाँ से चल दी।

इधर रह गई यह दो आत्मायें। अशोक और नीलू। शोकपूर्ण उलझन में फंसी हुई। निरुपाय और संज्ञाहीन।

नीलू भी एकान्त में कुछ सोचना चाहती थी। बोली—‘यदि ब्राजा दे तो मैं थोड़ा आराम कर लूँ?’

‘अच्छी बात है, तुम आराम करो—’अशोक ने उठते हुए कहा। कुछ रुक कर उसने पूछा—‘राहुल कहाँ होगा?’

‘सुनीता के पास ही खेलता होगा—’नीलू ने उत्तर दिया। संक्षिप्त-सा कह कर बोली—‘सुनीता तो बड़ी सारी हो गई।’

दोनों हंस दिये।

नीलू बोली—‘जबसे आई, वह एक पल के लिये भी मेरे समीप नहीं आई। मेरी ही बेटी और मुझे ही अजनबी समझती है। बाहरी किस्मत!’ उसने लम्बा सांस छोड़ा।

‘और राहुल को भी तो देखो—’अशोक ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा—‘वह मुझसे कटा-कटा फिर रहा है। उसके लिये मैं अजनबी हूँ’.....

‘बच्चे हो नहीं, हम सभी एक-दूसरे के लिये अजनबी हैं—’नीलू ने वेदना से परिपूर्ण विकम्पित स्वर में कहा—‘जैसे मैं आपके लिये अजनबी हूँ—’

अशोक ने अपने होठ दांतों से कसकर भींच लिये।

नीलू बोली—‘सुबह से इस कमरे में ठहरी हुई हूँ। यह कमरा मेहमानों का है। आप और मैं सदा इसमें आये हुए अतिथि को ठहराया

करते थे । और आज इनमें मैं ठहरी हुई हूँ । अपने ही घर में मैं मेहमान बन कर आई हूँ.....' उसका कण्ठ स्वर रुद्ध हो चला था ।

'नीलू ।' अशोक का स्वर कराह उठा । उसने कातर, शून्य दृष्टि से नीलू की ओर देखा और धीरे दृष्टि झुका ली ।

नीलू ने दूसरी ओर मुंह फेर लिया था । उसने उचटती निगाह से नीलू की ओर देखा और फिर लड़खड़ाते पावों से कमरे से बाहर हो गया ।

उसके चले जाने के बाद उस कमरे में देर तक अश्रु व्याकुल सघन दीर्घ निःश्वास फूल-फूल का स जहराता रह गया ।



चौदह

कुछ दूर जाकर अशोक रुक गया और उस बन्द दरवाजे को देखता रहा। नीलू ने दरवाजे की चिटखनी नहीं लगाई थी। यदि वह चाहता तो कमरे में प्रविष्ट हो सकता था पर वह ऐसा अनुभव कर रहा था जैसे वह द्वार उसके लिये सदा के लिये बन्द हो गये हैं। वह डगमगाते पैरों से आगे बढ़ गया।

निरुद्देश्य-सा, वह पैरों की ही प्रेरणा पर चलता रहा और घूमता-घामता नदी के किनारे पहुँच गया। उसे एकान्त की जरूरत थी। इस एकान्त में अतीत के विचार और घटनायें एक चल-चित्र की भांति उसके नेत्रों के सम्मुख घूमने लगीं। वह किनारे पर एक जगह बैठ, सिगरेट पर सिगरेट सुलगाये चला जा रहा था। उसकी आँखें उन तड़पती और मचलती हुई लहरों का पीछा कर रही थीं। लहरें शोर मचाती-सी आतीं और किनारे को छूती हुई दूर चली जातीं। अशोक

ज्ञान-शून्य-सा देख रहा था कि जैसे उन लहरों पर उसकी जीवन-नीका हिचकोले खा रही है ।

वह सोच रहा था कि नीलू की ज़िन्दगी के साथ वह कितनी बड़ी उलझन में फंस गया है । इस उलझन से निकलने का कोई उपाय नज़र नहीं आता । काश, वह उस लाश को अच्छी तरह देख लेता । उस एक अंगूठी ने जो उस लाश के हाथ में थी, उसे यह मानने पर विवश कर दिया कि हो न हो, यह नीलू का ही शव है । उसे चाहिये था कि वह राहुल की और अच्छी तरह तलाश करता । यदि वह कुछ और प्रयत्न करता—कुछ और तो कदाचित् नीलू और राहुल दोनों ही उसे मिल जाते । और यदि नीलू मर ही चुकी थी तो उसे चाहिये था कि जीवन के शेष दिन भी वह नीलू की स्मृति में गुज़ार देता । अंजना से विवाह करके उसने उसके जीवन को भी नर्क बना दिया । और अब वह ज़िन्दगी के न जाने कौनसे विचित्र चौराहे पर आकर खड़ा हो गया है ?

.....नीलू ने उसे जीवन में प्यार के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया । वह स्वयं भी नीलू से कितना प्यार करता था और अब भी करता है । वह उसके तीन बच्चों की माँ है । वह इन दो बच्चों पर जीवन न्यौछावर करती रही है । दूसरी ओर अंजना है । वह अंजना को भी कितना प्यार करता है । वह भी तो उसकी अपनी एक बच्ची की माँ है । उसने भी तो उसे ग़म के अंधेरों से बाहर निकाला है, जीवन को एक नई किरण प्रदान की है । जब वह दुःखों के अन्धेरे समुद्रों में डूब रहा था तो इसी अंजना ने तो उसे सहारा दिया था । वह उसके प्यार, त्याग और बलिदान को कैसे भूल सकता है ? लेकिन इसका परिणाम क्या होगा ? वह दोनों को प्रेम करता है, पर इनमें से एक को तो त्यागना ही होगा । पर किसे त्यागा जाए ? किसे रखा जाए ? न नीलू का कोई दोष है और न अंजना का । यह निर्णय करना बड़ा कठिन है । हे भगवान, वह कैसी उलझन में फंस गया है । आशा की कोई भी किरण दिखाई नहीं देती । आखिर क्या होगा ? यदि वह आत्म हत्या करले तो क्या यह समस्या सुलभ सकती है ? ऐसा करने से क्या इन दोनों का

सिंहली की पहेलियाँ उलझाने लाता है।
 My Review

जीवन नक बनने से बच सकेगा ? क्या सम्पूर्ण समस्या का समाधान हो जाएगा ?.....

विचारों का तांता बंधा रहा। वह असमंजस में पड़ा रहा और हत प्रम-सा सोचता रहा। काफ़ी समय बीत गया था पर गुल्मी सुलभती दिखाई न दी। वह अपनी जगह से उठा। सीने का बोझ पहले से कहीं अधिक बढ़ चुका था।

उधर अंजना अपने पापा के यहां एक कमरे में पड़ी-पड़ी सोच रही थी। उसके मनोमस्तिष्क में उलभन ही उलभन थी। इन उलभनों से मामला साफ़ होना दूर की बात, और भी उलभता हुआ दिखाई दे रहा था। नीलू उसकी शास्त्रोक्त पत्नी है। वह स्वयं भी एक कानूनन पत्नी है। वह अशोक को बहुत प्यार करती है, वह उसके बिना एक पल भी-कैसे जीवित रह सकेगी ? अशोक का विचार था कि नीलू मर चुकी है। और वह स्वयं भी यही समझती थी कि नीलू मर चुकी है। एक प्रकार से दोनों ने ही यह समझकर कि नीलू अब इस संसार में नहीं रही, सब्र कर लिया था और शान्त, निःसंकोच बैठ गये थे। जब दोनों को ही अचानक यह मालूम हुआ—अलग-अलग समय पर—कि नीलू अभी जीवित है तो सारी पृथ्वी तेज़ी के साथ एक उल्टा चक्कर काट गई। एक साथ कितने ही पर्दे आँखों के सामने से हट गये।

....पर इस अनुभूति के साथ कि नीलू अभी जीवित है, उसने यह तो कभी कल्पना भी नहीं की थी कि अशोक के सीने में नीलू के प्रति मृत पड़ा प्यार पुनर्जीवित होकर पहले से वेग-सा उमड़ आयेगा।

.....उसकी आँखों के सम्मुख थोड़ी देर पहले के वे सारे दृश्य सजीव हो उठे जो उसने स्वयं देखे थे। नीलू किस तरह अशोक के वक्ष से लग गई थी। उसकी आवाज़ में दर्द था, उद्वेग था, उपालम्भ था। उसे देखते ही अशोक की आँखें एकाएक खुशी से चमक उठी थीं। दिन भर कमरे में पड़े पड़े अनयक-से एक दूसरे की कथा एकाग्र बने उत्सुकता से सुनते रहे थे। और वह स्वयं कटी-सी, उपेक्षित-सी, भूली-

बिसुरी सी, अपने कमरे में अकेली पड़ी रही थी। वह जानती थी कि अभी दोनों की पारस्परिक बातों का अन्त नहीं हुआ है, दोनों के वर्षों प्यासे और व्याकुल हृदय परस्पर मिलने को अधीर हैं, इन्हें एक दूसरे में अपनी अन्तर्व्यथा उंडेलनी है—अतः वह वहां से चली आई। उन्हें वहां अकेले छोड़ दिया।

.....क्या वह दोनों इस समय प्यार भरी दास्तान सुना रहे होंगे ? क्षायद है, वह एक-दूसरे में आवद्ध हों—‘उफ़। यह विचार आते ही उसने तकिये को अपने दोनों हाथों से भींच लिया और फिर उस पर रखकर फूट-फूट कर रोने लगी। अब उसका क्या होगा ? उसकी अपनी बच्ची का क्या होगा ? समाज क्या कहेगा ? पिताजी कितना मना करते थे पर उसने उनकी एक नहीं मानी, उनकी एक नहीं चलने दी। अब जब सारा भेद खुलेगा तो पिताजी इस सदमे को कैसे वर्दाशत कर सकेंगे। हे भगवान, यह सब देखते-देखते क्या हो गया ?—उसने अपने आपको आकाश और पृथ्वी के मध्य निरावलम्ब, निराधार और निराश्रित खड़ी अनुभव किया और रुलाई दुगने वेग से बाहर फूटने लगी।

दूसरी ओर नीलू अपने कमरे में अकेली पड़ी ऐसे ही कितने विचारों के व्यूह में फंसी छटपटा रही थी।.....मुझे विश्वास है, कि अशोक बहुत अधिक दुःखी होगा इसलिये उसने अंजना से विवाह कर लिया होगा। वह दुःख और दर्द में डूब कर अकेला रह गया था। एकान्त, दुःख और विवशता में अंजना ने ही सहारा दिया होगा। लेकिन मुझे विश्वास है कि अशोक अब भी मुझसे प्रेम करता है। जब मैं अचानक कमरे में प्रविष्ट हुई तो उसकी आँखें स्पष्टतया उसके हृदय को प्रतिबिम्बित कर रही थीं। फिर कितने प्यार से भर कर उसने मुझे अपने बाहुपाश में भर कर मेरी समस्त अन्तर्व्यथा की कथा को किस एकाग्रता के साथ सुना था। मुझे तो उसके प्रेम में तनिक भी सन्देह नहीं। वही पहले-सा निर्मल, स्वच्छन्द और निश्छल प्रेम है। कहीं भी तो कुछ परिवर्तित नहीं। ठीक है, मुझे अंजना से बातें करनी चाहियें। हम दोनों किसी न किसी परिणाम पर अवश्य पहुँचेंगी।.....

84
True love
Never
can be
broken

तीनों में नीलू ने ही कदाचित् एक उचित निर्णय लिया था ।

इस विचार को दिल में लिये वह रात के लगभग नी बजे अपने कमरे से बाहर निकली । आंगन में आया वच्चों को लिये बैठी थी । वह उसके पास गई और पूछा—‘अंजना वापस लौट आई ?’

‘जी ।’

‘कब लौटी ?’

‘करीब आधा घंटा पूर्व ।’

‘अच्छा’, यह कह, नीलू एक कमरे की ओर मुड़ गई ।

कमरे के द्वार भिड़े हुए थे । नीलू ने दरवाजे पर दस्तक दी । थोड़ी देर बाद अंजना ने स्वयं आकर द्वार खोले । सामने नीलू खड़ी थी । उसने कभी यह विचार भी नहीं किया था कि नीलू इस तरह उसके पास चली आएगी । उसका मन चीख-चीख कर कहने लगा—‘तुम यहाँ क्यों आई हो ? तुम मेरा जीवन बर्बाद करने वाली हो । तुम मेरे जीवन पर अमावस्या हो, तुषारपात हो, एक तूफान हो, एक प्रचण्ड वेग हो । तुम्हारा यहाँ क्या काम ?’

पर उसने ऐसा कुछ नहीं कहा । प्रकट में मुझिये-से स्वर में बोली—‘अन्दर आजाइये ।’ नीलू ने परिमार्जित मुस्कान के साथ जैसे अंजना को धन्यवाद दिया । उसके चेहरे पर प्रकृतिस्थिता झलक रही थी । वह निश्चय करके आई थी कि वह अंजना से किसी प्रकार का झगड़ा नहीं करेगी । वह उससे कहेगी कि अशोक उसका है । वह उसके बिना एक पल भी नहीं रह सकती । वह यह सब बातें उसे बड़े प्यार से समझा-येगी । झगड़े-दंगे की कोई जरूरत वह नहीं आने देगी ।

नीलू ने कमरे में प्रविष्ट किया और अंजना ने कोने में पड़े एक सोफे पर उसे बैठ जाने का अनुरोध किया और फिर आशा से दो प्याले कॉफी बना लाने को कहा । इधर-उधर निरुद्देश्य-सी कोई चीज ढूँढती हुई नीलू के पास सोफे पर आकर बैठ गई ।

दोनों मौन थीं । दोनों एक दूसरे की दुश्मन थीं । आज दोनों का

परस्पर मुकाबला था। उनमें से एक को रहना था। उनमें से एक रहेगी। नीलू ने यह निश्चय कर लिया था कि इस बात का फैसला यहीं होगा—केवल अंजना के साथ। दोनों यही सोच रही थीं कि बात किस तरह शुरू की जाय ? दोनों एक दूसरे को कनखियों से देखती रहीं।

अंजना ने ही आखिर उस नीरवता को भङ्ग करते हुये बात छेड़ी—
'आपका उस ट्रेन-दुर्घटना से बच जाना चमत्कार से कम नहीं।'।

'हाँ उससे अधिक चमत्कारपूर्ण है मेरी स्मरण शक्ति का पुनः लौट आना—' औपचारिक ढङ्ग से नीलू ने उत्तर दिया।

'आप कैसे बचीं ? आगे क्या-क्या हुआ ? मुझे कुछ सुनाइये तो सही—' अंजना ने उत्सुकता प्रकट की।

नीलू अब ज़रा खुलकर बैठी। उसने सोचा, शायद अंजना यह सब शिष्टता के नाते ही पूछ रही है वरना इस संसार में अंजना को तो पहली स्त्री होना चाहिये कि जिसकी असीम इच्छा होगी कि मैं उस दुर्घटना में मर जाती। मैं बचकर क्यों निकल आई ?

नीलू ने संक्षेप में रेल दुर्घटना और फिर डाक्टर के यहाँ पहुँचने की कहानी शुरू की। वह अनिच्छापूर्वक कहानी का वर्णन कर रही थी। किन्तु इसी बीच उसने एक नज़र अंजना पर डाली। वह बड़े ध्यान, आश्चर्य, एकाग्रता और सहानुभूति के साथ सब कुछ सुन रही थी। इसके बाद नीलू ने विस्तार से कहानी सुनानी शुरू की। अंजना कई बार रो पड़ी। विशेषतया जब उसने बताया कि किस तरह वह अनीता को दो भारी भरकम तख्तों के बीच से निकालने का संघर्ष करती रही—। उस समय अंजना के मुँह से हल्की-सी चीख निकल पड़ी।

इसके बाद उसने अपने को लेकर डाक्टर के यहाँ की कहानी संक्षेप में सुनाई। एक-एक याददाश्त के लौटने की बात पर विस्मय और हर्ष से अंजना का चेहरा दीप्त हो उठता था। और जब नीलू उस स्थल पर आई जहाँ उसे पत्र द्वारा डाक्टर धीरेन्द्र की मार्फत सूचना मिली थी कि अशोक हृदय गति के वन्द हो जाने से दुनिया छोड़ चुका है तो

अनायास ही अंजना के मुंह से निकला—‘वह पत्र मैंने लिखा था—’
और आवेष्ट में उसकी आँखें गीली हो गईं ।

चौंक कर नीलू ने अंजना के चेहरे की ओर देखा ।

‘सच, वह पत्र मैंने लिखा था—’ अंजना खुले दिल से अपना
अपराध स्वीकार कर रही थीं ।’

नीलू निश्चिंत ही रही । वह एक शब्द भी नहीं बोली । उसने
अपनी गर्दन झुका ली थी और देवैनी-से अपनी गोद में रखे हाथों को
मसलने लगी ।

‘मैं जानती हूँ, आप उस झूठे पत्र के लिखने पर मुझे घृणा करने
लगेगी—’

‘नहीं, जानती हूँ कि तुम अशोक को प्यार करती हो और प्यार में
इन्सान स्वार्थी और अंधा हो जाता है । तुम यह नहीं चाहती थीं कि
अशोक किसी और का होजाये—खासतौर से तुम्हारे अपने विवाह
के पश्चात् !’

बात सुनकर अंजना का हृदय नीलू के प्रति अपार श्रद्धा से भर
उठा । उसे यों अनुभव हुआ जैसे यह नीलू नाम की नारी अपने
भीतर संसार के समस्त जटिल प्रश्नों को हल किये बैठी है । दुखों और
वेदनाओं से परिपूर्ण इसके भीतर छिपी बैठी नारी वास्तव में एक
विलक्षण नारी है—विचित्र सौन्दर्य से परिपूर्ण, एक सहृदय और उदार ।
कही हुई बात उसके हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ गई ।

एक बार कमरे में फिर खामोशी छा गई । अब मतलब की बात
किस प्रकार शुरू की जाय ? नीलू सोच रही थी कि अंजना बहुत अच्छी
लड़की है । अपने अपराध की बात भी इसने किस सरलता और निष्कपटता
से कहा डाली—कोई संकोच तक नहीं किया । इसलिये बड़े अच्छे तरीके
से समस्या को सुलझाना चाहिये ।

इतने में कॉफी आ गई । उन दोनों को टिकने की जगह मिल गई ।

एक चुस्की भरकर नीलू ने पूछा—‘अंजना, यह बताओ तुम किस

तरह, कब और कैसे अशोक से मिलीं ? कैसे तुम परस्पर विवाह के सूत्र में बंधे ?'

अंजना ने अपनी नम आँखों को साड़ी के छोर से पोंछ डाला । उसके चेहरे पर अधिकार की गरिमा पैदा हुई । वह नहीं चाहती थी कि अपने प्रेम की कहानी वह एक ऐसी स्त्री को सुनाये जो कभी सुनना नहीं चाहेगी । उसका एक-एक शब्द उसके लिये घृणा का विषय होगा । इसलिये उसने काँफी की एक घूँट भरकर, यह कहकर टाल दिया—'मेरे पिताजी इनके अफसर होते थे और यह उनके आधीन काम करते थे ।'.....

'अच्छा—फिर ? उत्सुक हो, नीलू ने पूछा ।

इसके बाद अंजना ने धीरे-धीरे दबी जबान में अपने प्रेम की कहानी शुरू की । उच्छ्वासों, हल्के-हल्के आंसुओं और ठंडी-ठंडी आँखों में घिरी कहानी आगे चलती रही । अंजना कह रही थी—'मुझे मालूम नहीं था कि मैं उनसे प्रेम करने लगूँगी । मैंने सुनीता को अपना लिया । मैं उसे पहले अपनी छोटी बहन और फिर अपनी बेटी की तरह प्यार करने लगी । मैं उसके बिना एक पल भी नहीं रह सकती थी—'

अंजना ने जब देखा कि नीलू बड़ी तन्मयता के साथ सब बातें सुन रही है तो उसने पिछली तमाम बातें कह दीं—'बहन बात यह है कि केवल मैंने ही प्रेम नहीं किया बल्कि बात धीरे-धीरे यहाँ तक पहुँच गई कि बाद में अशोक को भी मुझसे प्यार हो गया ।'

नीलू के सम्मुख दो बातें स्पष्ट हो गईं । पहली तो यह कि अंजना उसकी अपनी बेटी सुनीता से कितना प्यार करती है और कदाचित् सुनीता का बाल-सुलभ हृदय अंजना से प्यार की अनुपस्थिति में मुर्झा और टूट सकता है । दूसरी यह कि अशोक के बिना इस अंजना का जीवन व्यर्थ ही, अकारण ही अन्धकार पूर्ण और नीरस बन जाएगा ।

यह दोनों बातें नीलू के मानस-चेतन पर छा गईं और वह एक अव्यक्त-सी उदासी से घिरी, अस्पष्ट से विगलित कण्ठ स्वर में बोली—

'वहन, मैंने अपना मिशन पूरा कर दिया है। राहुल को मैंने उसके पिता तक पहुँचा दिया है।'.....

अंजना ने इस बार फिर चीँक कर नीलू की ओर देखा। अंजना के होठ विस्मय से खुले के खुले रह गये। वह इस नीलू नाम की पास बैठी नारी की गरिमा और उसके आन्तरिक सौन्दर्य की याह नहीं पा सकी। उसकी विलक्षण विशालता ने अंजना के समस्त अस्तित्व को जैसे ढंक दिया था।

थोड़ी देर बाद नीलू वहाँ से उठकर चली आई।

CONVERSION TABLE

in	mm
1	25.400
2	50.800
3	76.200
4	101.600
5	127.000
6	152.400
7	177.800
8	203.200
9	228.600
10	254.000
11	279.400
12	304.800

TAP DRILL

पन्द्रह

रात्रि के लगभग ग्यारह बजे होंगे। नीलू को नींद नहीं आ रही थी। वह बेचैनी से इधर उधर करवटें बदल रही थी। कितने ही विचार उसे नीरवता से भरे उस कमरे में बुरी तरह मथ रहे थे। अशोक सो चुका था, बच्चे सो गये थे। केवल अंजना के कमरे में अभी बस्ती जल रही थी।

सहसा वह उठी। बैड लैप को जलाया और कागज़-पैन लेकर उसने लिखना शुरू किया—

‘मेरे प्रिय अशोक,

मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं अब तक केवल इसीलिये जीवित रही कि तुम्हारा राहुल तुम तक पहुँचा दूँ। यह मैंने कर दिया है। भगवान के लिये मेरे किसी भी कार्य को अन्यथा न समझना। मेरी समस्त त्रुटियों को क्षमा कर देना—यह मेरा अनुरोध है वरना मेरी आत्मा संतप्त रहेगी। मैं तुम्हें कभी परेशान नहीं देख सकती—मेरी हार्दिक और अन्तिम इच्छा अब तक यही रही है कि तुम किसी तरह

खुश रहो। तुम्हारी खुशी के लिये यह ज़रूरी हो गया था कि एक डोरी कट जाय। राहुल को तुम्हें सौंपने के बाद और तुम्हारे अन्तिम दर्शन कर चुकने के बाद मेरे जीवन के सब उद्देश्य पूर्ण हो गये हैं। और अब मेरे अपने जीवन का कोई अर्थ भी नहीं है। मैं वैसे भी मर चुकी थी और मुझे मर ही जाना चाहिये था। अतः आज आपसे बिना आज्ञा माँगे विदा ले रही हूँ। धृष्टता है मेरी। पर अब तक जिस प्यार से मेरी और धृष्टताओं को दूरन्दाज कर दिया—वैसे ही इसे भी कर दोगे। इसी कामना को लिये और अपना समस्त अन्तिम प्रेम तुम पर न्यौछावर करती हुई अपनी डोरी को आप लोगों की डोरियों से अलग कर रही हूँ।

—नीलू।

नीलू ने अपने टप्-टप् करते हुए आंसुओं को किसी प्रकार साड़ी से पोंछा और दूसरा पत्र लिखने बैठ गई—

‘प्रिय अंजना’,

मैं संसार भर के लिये मर चुकी थी और एक प्रकार से मुझे मर ही जाना चाहिये था। किन्तु यदि ऐसा होता तो मेरी कुछ-एक जिम्मेदारियाँ जिनका उल्लेख कुछ ही घंटों पूर्व तुमसे किया था, अपूर्ण रह जाती। वह अब पूरी हो चुकी हैं। और अब मेरी जिन्दगी कोई अर्थ नहीं रखती।

मैं कानून की बात करने के पक्ष में नहीं थी। मैंने तलाक अथवा विवाह-विच्छेद की आज तक कभी कल्पना भी न की। मैं अधिकार की बात में भी विश्वास नहीं रखती। अधिकार में प्यार नहीं टिका करता।

हम में से एक डोरी को काटना था। ऐसा स्थल आ गया था। भंवर में घिरी नावों में से एक को डूबना था, ताकि अन्य जिन्दगियों का विनाश न हो। यह सब सोचते हुए मैं अपनी डोरी आप ही, स्वेच्छा से काट कर अलग कर रही हूँ। अशोक को जितना प्यार मैं करती हूँ, उसके लिये यह आवश्यक था।

मेरी अन्तिम हाथ जोड़ कर तुमसे प्रार्थना है कि मेरे अशोक को कभी दुखी मत होने देना वरना परलोक में भी मेरी आत्मा दुःख से

तड़फती रहेगी। यदि तुमने उन्हें सुखी रखा तो जहाँ कहीं भी मैं होऊंगी, वहीं से तुम्हारे लिये मेरे अपने अन्तःकरण से आशीर्वादों के फूल बरसेंगे।

एक और बात। मेरी अन्तिम अभिलाषा—मेरे दोनों बच्चों को अपना समझती रहना। वह मेरे जिगर के टुकड़े हैं। वह मेरे.....

नीलू !

काफ़ी देर तक नीलू सुबकती रही।

जब चित्त कुछ शान्त हुआ तो उसने तीसरा और अन्तिम पत्र डाक्टर सुधीर को अपनी समस्त कृतज्ञतायें प्रकट करते हुए लिखा।

जब लिख चुकी तो उसने कागज़ और पैन उठाकर एक ओर ताक में रख दिये। लिखे हुए पत्रों को तकिये के नीचे दबा दिया और फिर उठाकर अपने सूटकेस के पास पहुँची। उसे खोला। उसमें से एक शीशी निकाली और उसे हाथ में लेकर कुछ देर ज्ञान शून्य-सी अवस्था में खड़ी-खड़ी देखती रही।

‘नींद की गोलियाँ—’ वह स्वतः ही अस्फुट-से स्वर में वड़वड़ाई। और उसके चेहरे पर एक विचित्र-सी मुस्कान फैल गई। यह मुस्कान स्वाभाविक नहीं थी।

यह गोलियाँ वह आते समय डा० धीरेन्द्र से मांग लाई थी।

उसने शीशी का ढक्कन खोला और.....

तभी, द्वार तेज़ी के साथ खुले और आया ने हड़बड़ाते हुए कमरे में प्रवेश किया और चीखते हुए, विलाप करते हुए सूचना दी—‘बीबीजी, अनर्थ हो गया। छोटी मालकिन ने ज़हर खा लिया।’ यह कह, वह उल्टे पैरों भाग छूटी।

और खबर सुनते ही नीलू के हाथ से शीशी छूटकर फ़र्श पर गिर पड़ी और टुकड़े-टुकड़े हो गई। वह पाषाण-वत्, जड़वत्, स्तब्ध खड़ी रह गई।

पल भर में सारा घर रोदन का स्थल बन गया था।

41-5000

DATE SLIP

419-C
1378785

GPS-128071-50000

A book borrowed must
be returned within 14
days of its issue, it may
be reissued for fifteen
days, if not requisitioned
by another member.
Members residing outside
may return books
within thirty days of

136
4

136
—
4